वितस्ता

सम्पादक

डॉ० रमेशकुमार शर्मा





हिन्दी परिषद्

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय (कश्मीर-मण्डल) श्रीनगर

की

मुख-पत्रिका

वसन्त अङ्क

जिल्द ३, अङ्क १



वितस्ता

(मार्च, १९६७)

सम्पादक :
डॉ० रमेश कुमार शर्मा,
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंहबाग, श्रीनगर, कश्मीर, (भारत)।

●

सहायक :
डॉ० मोहिनी कौल
डॉ० मुहम्मद अयूब खाँ
श्री भूषणलाल कौल
सन्तोष ज़ारू (अनुसंधित्सु)
फूलकुमारी मोज़ा एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
नीना कौल एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

●

प्रकाशक :
हिन्दी परिषद्
स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंहबाग, पो० नसीमबाग, श्रीनगर,
कश्मीर, (भारत)।

एक प्रति—२ रु०

जि० ३; अंक १

प्रिय भाई प्रो० [illegible] को
शुभकामनाओं सहित
[illegible]

सम्मतियाँ

प्रिय राजकुमारी जी,

'वितस्ता' हिंदी परिषद का सुंदर प्रयास है परंतु अभी पूर्णतया सर्वांगीण नहीं। इस सिद्धि के लिये आप तथा आपके सहयोगियों को तप करना होगा: साधना करनी होगी। आपका विश्वास और दृढ़ निश्चय ही 'शेष' कार्य पूरा कर पायगा।

हम अहिंदी प्रदेश के वासी हैं। हमारे लिये यह लज्जा का नहीं वरन् गौरव का विषय है। चहुं दिशि असंख्य अवसर राष्ट्रभाषा हिंदी का गुणगान करने के लिये बिखरे पड़े हैं। उनका हर संभव उपयोग कीजिये। आपकी साधना अवश्य सफल होगी।

मेरी शुभकामनाएं आपके साथ हैं।

भवदीय
कर्ण सिंह
(कर्ण सिंह)
राज्यपाल, जम्मू-काश्मीर

सुश्री राजकुमारी राज़दान,
मंत्री,
हिंदी परिषद,
परास्नातक हिंदी विभाग,
जम्मू-काश्मीर विश्वविद्यालय (काश्मीर मंडल),
श्रीनगर (काश्मीर).

(२०-१२-१९६६ को विभाग में प्राप्त)
- सम्पादक

उप शिक्षा मंत्री
भारत
DEPUTY EDUCATION MINISTER
INDIA
नई दिल्ली
नवम्बर ७, १९६६ ई०

प्रिय महोदया,

आपका पत्र मिला। धन्यवाद। मुझे 'वितस्ता' की प्रति भी मिल गई थी, उसके लिये भी आभारी हूँ। आप लोगों ने अपनी हिन्दी परिषद् की ओर से इस पत्रिका का जो प्रकाशन प्रारम्भ किया है, उसके लिये बधाइयाँ और शुभ-कामनायें स्वीकार कीजिये। मुझे भरोसा है कि इसके प्रकाशन से राष्ट्रभाषा हिन्दी के पठन-पाठन को अच्छा प्रोत्साहन मिलेगा। मैं आप सबके इस आयोजन की सफलता के लिये मंगल-कामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

भवदीय
भक्त दर्शन

राजकुमारी राज़दान,
मन्त्री, हिन्दी परिषद्,
जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
कश्मीर मण्डल,
श्रीनगर।

प्रधान मन्त्री सचिवालय
नई दिल्ली–११
PRIME MINISTER'S SECRETARIAT
NEW DELHI–11

प्रिय महोदया,

प्रधान मन्त्री जी को आपका पत्र और 'वितस्ता' की एक प्रति प्राप्त हुई। पत्रिका में जिस स्तर के साहित्यिक और शोधपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुए हैं उनसे आप लोगों की अध्ययनशीलता और सुरुचि का अच्छा परिचय प्राप्त होता है।

पत्रिका में विषय का चयन सुन्दर है। तुलनात्मक अध्ययन से पत्रिका का महत्त्व बढ़ गया है। इस तरह के प्रयास होने चाहिए और खासकर अहिन्दी क्षेत्रों में जहाँ हिन्दी के अध्ययन और अध्यापन की व्यवस्था है; वहाँ के लोगों का इस क्षेत्र में विशेष दायित्व है।

प्रधान मन्त्री जी साहित्य के सर्जन और अनुशीलन में आप लोगों की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनाएँ भेजती हैं।

भवदीय
बच्चू प्रसाद सिंह
हिन्दी अधिकारी

सुश्री राजकुमारी राज़दान,
मन्त्री, हिन्दी परिषद्,
परास्नातक हिन्दी विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, (कश्मीर) भारत।

काश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की ओर से प्रकाशित होने वाली 'वितस्ता' नामक पत्रिका का अंक मैंने देखा है। यह शुद्ध साहित्यिक पत्रिका है और अपना काम वह काफी मनोयोग के साथ कर रही हैं। मैं पत्रिका के सम्पादकों को बधाई देता हूँ और उनके प्रति अपनी शुभ कामना अर्पित करता हूँ।

रामधारीसिंह 'दिनकर'
३-११-६६

जम्मू, २८-९-१९६६

प्रिय रमेश,

यह जानकर आनन्द एवं आश्चर्य हुआ कि श्रीनगर में सामने आने वाली कठिनाइयों के रहते भी तुम विभाग से इतनी सुन्दर पत्रिका निकालने में समर्थ हुए हो। तुम्हारी पत्रिका की सारी रचनाएँ स्तरीय हैं। 'वितस्ता' के इस उत्तम अंक ने मुझे फिर याद दिला दी कि ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसमें तुम हाथ डालो और उसे सफलतापूर्वक सम्पन्न न करो। मैं हृदय से तुम्हें, विभाग के अन्य शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को बधाई देता हूँ। आशीर्वाद सहित—

जगन्नाथ तिवारी
आचार्य एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
जम्मू मण्डल; जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
जम्मू। (कश्मीर)

डॉ० रमेश कुमार शर्मा
श्रीनगर।

श्री डॉ० रमेशजी, (सम्पादक—'वितस्ता')

'वितस्ता' का अगस्त का अंक प्राप्त हुआ। तदर्थ बहुत-बहुत धन्यवाद। विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग का यह आयोजन अत्यन्त सुन्दर हुआ है। संकलित लेखों में 'काश्मीर—एक सांस्कृतिक संश्लेषण', 'काश्मीरी लोक-गीत', 'आधुनिक समालोचना और रीतिकाल' लेख विशेष पसन्द आये। 'ज़िन्दगी का खत' अपनी मौलिक विधा के साथ सुन्दर बन पड़ा है।

हमें विश्वास है, काश्मीर की विशिष्ट संस्कृति, संगीत, लोक-कथा और काश्मीरी समग्र वाङ्मय के प्रसार तथा अनुसन्धान में यह 'वितस्ता' की विशाल धारा अधिकाधिक रस-सेचन और श्रीवृद्धि कर सकेगी। हम इसका हार्दिक स्वागत करते हैं।

कैलाशचन्द्र मिश्र
साहित्याचार्य, एम० ए०,
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
१५-६-६६

कुरुक्षेत्र
२२-१०-६६

प्रियवर रमेश,

जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग द्वारा प्रकाशित' 'वितस्ता'' नामक पत्रिका मिली। पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख पठनीय हैं। तुलनात्मक समीक्षा और अनुसन्धान सम्बन्धी निबन्धों में विवेचन की गम्भीरता और दृष्टि की अतल-प्रवेशिनी तीक्ष्णता का आभास मिलता है। हिन्दी पाठकों को कश्मीरी भाव-धरती पर लाने का प्रयास भी 'वितस्ता' में है। विश्वास है, कश्मीर के जीवन को अभिसिक्त करने वाली और सैकड़ों सुकुमार प्राणों को अपने गम्भीर, स्पंदित वक्ष पर लहरों की मन्द-मन्द लोरियों से थपथपाने वाली वितस्ता के समान ही यह 'वितस्ता' भी कश्मीर में पलते-पनपते हिन्दी के किशोर प्राणों को अभिषिक्त करेगी, उसमें अभिनव जीवन और क्रियाशील जवानी जगाएगी। शुभकामनाओं सहित

विनीत :
जयनाथ 'नलिन'
हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र।

डॉ० रमेश कुमार शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
ज० क० विश्वविद्यालय
श्रीनगर, कश्मीर।

University of Jammu & Kashmir; Jammu Division

CANAL ROAD
JAMMU (TAWI)
29th. Sept. 66

Dear Dr. Sharma,

I write to thank you for a copy of "VITASTA" which you sent to me some time ago. I must congratulate you for bringing out this fine publication. The get-up is very fascinating and the contents illuminating and thought-provoking. Apart from other articles of academic interest I find Dr. Shakil-Ul-Rehman's "Mukhtar Sahib" very touching.

With kind regards,

Yours sincerely
K. K. GUPTA

Dr. Ramesh K. Sharma,
Head of the Department of Hindi,
University of Jammu & Kashmir, **Srinagar**

हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर
१३-११-६६

प्रिय डॉ० रमेश

मुझे 'हिन्दी परिषद्' द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'वितस्ता' का अंक मिला। मैं उसे ध्यान पूर्वक पढ़ गया हूँ। में निस्संकोच कह सकता हूँ कि यह एक अत्यन्त श्लाघ्य प्रयत्न है। निबन्धों का स्तर भी ऊँचा है और चयन तथा संपादन में सुरुचि मिलती है। मैं समझता हूँ आपके निदेशन में यह पत्रिका और अधिक सफलता प्राप्त करेगी। जम्मू एवं कश्मीर की प्रतिभाओं को यह प्रकाश में लायेगी ही, उन्हें अखिल भारतीय क्षेत्र में मान्यता भी प्रदान करायेगी। इस क्षेत्र में जो कुछ भी साहित्य उपलब्ध है उसे हिन्दी में, इस पत्रिका के माध्यम से आप प्रकाश में लायेंगे, ऐसा विश्वास है।

मैं इस प्रकाशन के लिए आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

सस्नेह
सत्येन्द्र
आचार्य एवं अध्यक्ष

सेवा में,
डॉ० रमेश कुमार शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर, कश्मीर

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
शासकीय महाविद्यालय,
महू (इन्दौर) म. प्र.
२६-६-६६

प्रिय भाई,

'वितस्ता' (अगस्त ६६) की प्रति मिली ; तदर्थ धन्यवाद। 'हिन्दी परिषद्' के पदाधिकारियों और सदस्यों को अनेकों साधुवाद। हिन्दी में, भाषा एवं साहित्य की शोध-पत्रिका प्रकाशित कर आपने स्तुत्य कार्य किया है। जम्मू-कश्मीर में हिन्दी का प्रचार-प्रसार जो कर रहे हैं; उनके समुम्ख हम नत-मस्तक हैं।

पत्रिका का स्तर संतोषप्रद है। मुद्रण अवश्य इतना अच्छा नहीं। वैसे आपकी सीमाओं और कठिनाइयों को हम समझते हैं।

योग्य सेवा लिखें

आपका
महेन्द्र भटनागर

पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़–३
१४ नवम्बर, १६६६ ई०
६६–हि० वि० १४५४

प्रिय बहन,

आपका कृपा पत्र मिला। "वितस्ता" पहले ही मिल गई है। यह पत्रिका मुझे बहुत पसन्द आई ; साज-सज्जा और विषय दोनों दृष्टियों से। कश्मीर से इतनी सुन्दर, हिन्दी पत्रिका निकालने के लिए मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। मेरी हार्दिक शुभकामना स्वीकार करें।

विनीत,
हजारी प्रसाद द्विवेदी

राजकुमारी राज़दान,
मन्त्री, हिन्दी परिषद्
परास्नातक हिन्दी विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर वि० वि०,
श्रीनगर, कश्मीर।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र (पंजाब)
५-११-६६

प्रियवर,

"वितस्ता" का अंक मिला। धन्यवाद। उसमें कश्मीर की संस्कृति, उसके लोक-जीवन और साहित्य के अतिरिक्त 'नवीन' और 'निराला' पर विभिन्न दृटिकोणों से विचार किया गया है। "आधुनिक समालोचना और रीतिकाल' 'कश्मीरीभाषा और ध्वनिविचार' शीर्षक अनुसंधानपरक लेख विशेष उल्लेख्य हैं। पत्रिका का स्तर विश्व-विद्यालय की प्रतिष्ठा के अनुरूप है। तदर्थ सम्पादक-मंडल बधाई का पात्र है।

सस्नेह

भवदीय,
विनयमोहन शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग।

डॉ० रमेशकुमार शर्मा,
अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग,
कश्मीर मण्डल, जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय,
अमरसिंह बाग, श्रीनगर, कश्मीर (भारत)

जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय कश्मीर मण्डल, श्रीनगर के हिन्दी-विभाग की ओर से 'वितस्ता' नामक एक उच्चकोटि की पत्रिका का श्रीगणेश हुआ है। सुदूर उत्तरवर्ती अहिन्दी प्रदेश से प्रकाशित इस पत्रिका की सामग्री को देखकर यह आशा बलवती होती है कि शीघ्र ही इसके द्वारा नयी प्रतिभाओं को प्रकाश में आने का सुअवसर मिलेगा। पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उस में एक साथ रचनात्मक, आलोचनात्मक और अनुसन्धानात्मक रचनाओं की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। इन सभी प्रकार की रचनाओं का स्तर सामान्य से कहीं अधिक उच्च है। हिन्दी-विभाग की गतिविधि का जो विवरण छपा है उससे यह प्रकट होता है कि विभाग के अध्यक्ष अपने सहयोगी प्राध्यापकों एवं छात्र-छात्राओं के सहयोग से उच्चस्तरीय साहित्यिक वातावरण के निर्माण के निमित्त प्रयत्नशील हैं। वे निरन्तर अपनी हिन्दी परिषद् की बैठकों के आयोजन एवं समय-समय पर विश्वविद्यालय में पधारने वाले कलाकारों तथा विद्वानों के भाषणों के सुनियोजित कार्यक्रमों द्वारा छात्र-छात्राओं को साहित्य के सृजन और अध्ययन-अध्यापन के लिये नये ढंग से तैयार कर रहे हैं।

मैं पत्रिका के यशस्वी और दीर्घ जीवन का अभिलाषी हूँ तथा समस्त विभाग को, जो एक संगठित परिवार जैसा प्रतीत होता है, बधाई देता हूँ ।

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
८-१०-६६
हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र ।

विश्वभारती पत्रिका
हिन्दी-भवन,
शान्तिनिकेतन, पश्चिम बंग ।
२६-६-६६

प्रिय डा० शर्मा

'वितस्ता' की प्रति प्राप्त हुई । धन्यवाद । आपका विभाग इतना समृद्ध है और साथ ही सजीव भी, इसका परिचय आपकी पत्रिका से मिला । काश्मीरी भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में जो जानकारी उसके लेखों ने दी है; वह प्रामाणिक है । पढ़कर संतोष हुआ । 'वितस्ता' के माध्यम से हम लोगों को इसी प्रकार काश्मीर के समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास की प्रामाणिक जानकारी मिलती रहेगी ऐसी आशा है । आपके प्रयास की सफलता के लिए हमारी शुभ कामनाएँ स्वीकार करें ।

भवदीय,
रामसिंह तोमर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग की हिन्दी परिषद् की ओर से प्रकाशित पत्रिका 'वितस्ता'····का सम्पादन सुरुचि पूर्ण है एवं योग्यता के साथ किया गया है ।····कुमारी श्यामा सेठी की रचना "जिन्दगी का खत" तथा कुमारी राजकुमारी राज़दान का लेख "कश्मीर—एक सांस्कृतिक संश्लेषण"···· अच्छे लगे ।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
(भूतपूर्व वित्त मन्त्री, उत्तर प्रदेश)
२-१०-६६ के 'सैनिक' से

औरंगाबाद, काशी ।

सम्मति :—

जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग की पत्रिका 'वितस्ता' को मैंने देखा और पढ़ा । इस प्रकार के प्रयास अभिवृद्धि पाएँ तो शिक्षा का प्रायोगिक स्तर ऊँचा होगा । इस पत्रिका की रचनाएँ सुरुचि एवं विचार की दृष्टि से अच्छी हैं और सामान्यतः सभी हिन्दी के अध्येताओं के लिए उपयुक्त हैं । विद्यार्थियों और अध्यापकों का यह सम्मिलित प्रयोग सुदृढ़ता प्राप्त करेगा—ऐसा मेरा विश्वास है और विश्वविद्यालय भविष्य में ऐसे उद्योगों में निरन्तर सहायता करे—ऐसी आकांक्षा भी है ।

जगन्नाथप्रसाद शर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष,

हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

हिन्दी क्षेत्र से बहुत दूर काश्मीर से प्रकाशित होने वाली यह पत्रिका (वितस्ता) हिन्दी प्रदेशों में प्रकाशित होने वाली अनेक पत्रिकाओं से बहुत अच्छी है । सामग्री और सम्पादन, दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट है । अतः सम्पादकों का प्रयास सचमुच सराहनीय है ।

इस पत्रिका में काश्मीर सम्बन्धी अथवा कश्मीर में रचे गए साहित्य का भी थोड़ा प्रकाशन होता रहना चाहिए कि जिससे साहित्य की वे पुरानी कड़ियाँ नवीन विधाओं से जुड़ी रहें । कवि क्षेमेन्द्र, दामोदर गुप्त, मिहाँसिह और महजूर की प्रवृत्तियों की धारा इस वितस्ता में प्रवाहित होती रहनी चाहिए ।

अंत में, मैं एक बार पुनः इसके सम्पादकों को बधाई देता हूँ ।

उदयशङ्कर शास्त्री
१३-२-६७
क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ,
आगरा विश्वविद्यालय,
आगरा ।

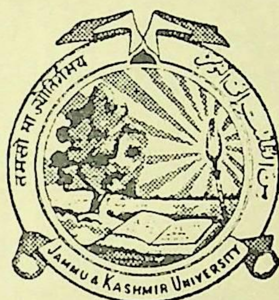
: : :

क्रम

सम्मतियाँ

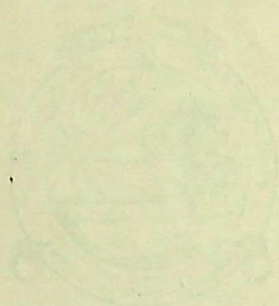
वितस्ता

(१९६७--वसन्त अंक)



अश्मन्वती रीयते सं रभध्वम्
उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः
शिवान् वयम् उत्तरेमाभि वाजान् ।। ऋ० १०-५३-८

(जीवन) सरिता की धारा पत्थरों से भरी हुई बहती जा रही है। समवेत् चलो। अपने मस्तकों को उन्नत किये हुए, पार (हो) चलो सखाओ ! यहीं छोड़ चलो उन्हें, जो सत् के विरोधी हैं—और (आओ) हम पार चलें उन (शक्तियों) के पास जो कि मंगलकारी हैं।



कश्मीर

(पाकिस्तानी आक्रमण के सन्दर्भ में लिखा गया वीर गीत)

घनश्याम अस्थाना
प्रवक्ता, अँग्रेजी विभाग, आगरा कालिज, आगरा

आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने,
माँगा हमसे नया लहू
धरती की आर्त्त पुकार ने !

नयी जवानी निकल रही है ढल-ढल कर इस्पात में;
नयी मशालें चमक उठी हैं भीषण झंझावात में;
सिंहासन डगमगा उठे हैं इस पागल तूफ़ान में;
टूट चुकीं मिजराबें कोमल इस जलते-से गान में;

गुंजा दिया है आज हिमालय
जनता की हुंकार ने;
आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने !

होने को है नया जागरण, लेकिन अब भी रात है;
पंथ शेष है अब भी, साथी, थोड़ी दूर प्रभात है;
नहीं डगमगा सकें कदम लेकिन इस बाक़ी राह में;
सावधान, जिन्दा है दुश्मन उस घाटी की छाँह में;

मोड़ दिया इतिहास नये पथ पर,
शोणित की धार ने;
आज चुनौती दी है युगको
दुश्मन की तलवार ने!

कल का सोया सर्द लहू बदला है अब फ़ौलाद में;
कल तक की बेबस चीत्कारें बदलीं सिंह निनाद में;
कल की सड़ी गुलामी का तम बदला मुक्ति-विहान में;
बदला है क्लीवत्व दास का पौरुष के अभिमान में;

इन्क़लाब के गीत बिखेरे
प्राणों के हर तार ने;
आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने।

सिंहनाद-सा गीत गरज मन की गहराई मापता,
नयी जिन्दगी का पग बढ़कर सागर-धरती नापता;
कायरता के शव पर पग रख पौरुष खड़ा पुकारता;
हिमगिरि का हर शृङ्ग हिन्द के यौवन को ललकारता।

जगा दिये पल बलिदानों के
आज मरण-त्यौहार ने।
आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने।

उन मुर्दों की बस्ती का जग भूखा है, असहाय है;
इन वणिकों से किन्तु न मेरा देश माँगता न्याय है;
इन्हें खड़े कर लेने दो प्रासाद भव्य आकाश पर;
इन्हें गीत गा लेने दो उन मज़लूमों की लाश पर।

पाँव लड़खड़ा दिये शत्रु के
केवल एक प्रहार ने।
आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने।

बांध लिया करता है पौरुष रुकती-सी हर साँस को;
युग के क़दम बदल देते हैं दुनिया के इतिहास को;
नन्हीं जड़ें थाम लेती हैं गिरते वृक्ष विशाल को;
जला दिया करता है यौवन बुझती हुई मशाल को।

झुका दिया है दर्प मृत्यु का
जीवन की ललकार ने!
आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने!

तुम्हें क़सम है तरुणाई के उठते हुए जुनून की!
तुम्हें कसम हैं बारामूला के शहीद के ख़ून की!
बढ़ते जाना तुम्हें कसम है बाग़ी की आवाज की!
लड़ते जाना, तुम्हें कसम है नये हिन्द के नाज की!

भेजा तुम्हें सलाम, शहीदों
के हर एक मज़ार ने!
आज चुनौती दी है युग को
दुश्मन की तलवार ने!
माँगा हम से नया लहू
धरती की आर्त्त पुकार ने!

बन्दहुँ सन्त असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
मिलत एक दारुण दुख देंही। बिछुरत एक प्राण हरि लेंही॥

—गोस्वामी तुलसीदास (रामचरित मानस)

एक भाव-नाटिका :—

धरती की पुकार

सरोजिनी कौल (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

पात्र परिचय

पुरुष पात्र :

एक युवक : जिसकी वेप-भूपा सभ्य युवकों सी है। यह युवक भारतीय संस्कृति में पला हुआ है (**इस युवक को सैनिक वेष-भूषा में भी प्रस्तुत किया जा सकता है**)

स्त्री पात्र :

धरती माँ : (**ज़मीन**) इसका शृङ्गार दो विभिन्न पहलुओं का सामंजस्य है। एक भाग शोक का चिन्ह प्रकट करता है तथा दूसरा साधारण सुन्दर होता है।

भारत माता : यह तेजस्वी देवी, प्रतिमा सी, नाटक के अन्तिम भाग में प्रकट होती है। (**उज्ज्वल वस्त्रों में लिपटी हुई, रत्न-जड़ित मुकुट धारण किये हुए, भारत के चित्र से उभरती सी**)।

पहला दृश्य

(**नेपथ्य से**) मानव प्रकृति के इस युग में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को

अराजकता की कुछ हद तक महत्व दिया जाता है और तानाशाही को सभ्य समाज में अत्यन्त निन्दनीय समझा जाता है। मानव अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए अपने जीवन की आहुति देने में नहीं हिचकता। माँ अपने बेटे को, बहन अपने भाई को, पत्नी अपने पति को इस स्वतन्त्रता के यज्ञ की आहुति बना देने में नहीं हिचकती भले ही उनका जीवन मिट्टी में मिल जाये, किन्तु इस हृदयग्राही अवसर पर धरती माँ चुप नहीं रह सकी उसकी पीड़ा उसके अधरों से उभर कर वायुमण्डल में बिखर जाती है। युद्ध के भयानक गर्जन के साथ उसकी कराहट वातावरण को बहुत ही करुणाजनक बना देती है।

[धीमी-धीमी बाँसुरी की आवाज आती है और फिर एकाएक गड़गड़ाहट की भयानक आवाज आती है मानो घमासान युद्ध हो रहा है। पर्दा खुलना शुरू होता है इसी आवाज के साथ; और पूरा पर्दा खुलने तक आवाज बन्द हो जाती है और फिर बाँसुरी की मधुर धुन सुनाई पड़ती है। उसके बाद जोर-जोर से कराहने की आवाज आती है और उसी आवाज को सुनकर अन्दर से एक युवक, स्वस्थ, सुन्दर भारतीय संस्कृति में पला हुआ, प्रगट होता है।

रंगमंच का दृश्य दो प्रकार का है एक ओर खण्डहर-बरबादी के स्पष्ट चिन्ह हैं और दूसरी ओर लहलहाते हुए खेत, हरियाली, खुशी, प्रसन्नता। (यह दृश्य पिछले पर्दे के दो भागों में विभक्त करके बनाया जा सकता है) ठीक मध्य में धरती माँ जो घुटनों के सहारे बैठी है, मुँह दिखाई नहीं देता।]

युवक : कौन है.....................कौन है (**नेपथ्य में**) (**कराहने की आवाज तेज हो जाती है**) कौन है ? (**इधर-उधर देखकर जब उसकी दृष्टि धरती माँ पर पड़ती है**) अरे यह कौन हो सकती है ? स्त्रियों का यह पहनावा और इतनी विचित्र वेश-भूषा। (**पास आकर**) उठिये देवी, आप कौन हैं ? आप क्यों कराह रही हैं ? आपको क्या दुःख है ? आपकी यह विचित्र वेश-भूषा मुझे आश्चर्य में डाल रही है। युद्ध की इन मँडराती हुई घटाओं में किसी का भी इस विचित्र वेश-भूषा में होना मुझे उलझन में डाल रहा है। देवी आप कौन हैं ?

[धरती माँ धीरे-धीरे अपना मुँह उपर उठाती है और युवक को ऊपर से नीचे तक निहारती है। युवक आश्चर्य चकित हो जाता है। एका-एक धरती माँ के बोलने की आवाज आती है किन्तु वह आवाज ऐसी लग रही है जैसे कहीं दूर से, चारों ओर से, आ रही हो।]

धरती माँ : तुम..................तुम मुझे नहीं जानते ? मैं धरती हूँ।

युवक : (आश्चर्य से) धरती !!

धरती माँ : हाँ धरती, वही धरती जिसके वक्ष पर उन्नत हिम-शृंग है, और पहलू में सिमटी हुई हजारों नदियाँ बह रही हैं। जहाँ अन-गिनत जीव अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिसमें चमन भी है और बहारें भी, जिसमें अज्ञात और ज्ञात सब कुछ है। जंगल हैं, हरियाली है। जो सूर्य की जलन सदियों से सहती आ रही है जिसे चाँद ने अपने स्नेह से कभी वंचित नहीं किया। मैं वही जमीन हूँ जहाँ भगवान कई बार आये और मुझ पर बढ़ते हुये अत्याचार को रोककर चल दिये। मुहम्मद, ईसा, राम, कृष्ण सभी मेरे अंचल के दूध से बढ़े और मेरी गोद में रहे। सभी ने आकार तुम जैसे मनुष्यों को जीना सिखाया—स्नेह प्यार का सन्देश दिया। मैं वही धरती हूँ मेरे लाल ! जो बरसों से मूक वेदना सहती चली आ रही है। मेरी कोख से निकला भीषण अनल मुझे ही जला जाता है किन्तु मैं उसे भी अपने ऊपर बिखरा कर शान्त कर देती हूँ।

युवक : "किन्तु देवी आज आपको क्या कष्ट है जो आप इस तरह से कराह रही हैं।

धरती माँ : "तू यह जानकर क्या करेगा, मुझे तूने और तेरे साथियों ही ने तो कष्ट दिया है अब तू क्या सहानुभूति दिखाना चाहता है। मेरी गोद में बहुत से पैदा हुये और मैं उनको भली भाँति पहचानती हूँ।"

युवक : "देवी ! रुष्ट मत होईये मैं आपका दुःख दूर करने का प्रयत्न करूँगा।"

धरती माँ : "मेरा दुःख दूर करने को तुझमें शक्ति कहाँ है युवक ! मेरा दुःख तो दुनियाँ का कोई भी प्राणी दूर नहीं कर सकता।"

युवक : "देवी बताने मात्र से भी दुःख दूर हो जाता है यही मैंने सीखा है—भले ही मैं आपका दुःख दूर न कर सकूँ किन्तु इससे आपको राहत तो मिलेगी ही।"

धरती माँ : युवक, बहुत चतुर हो तुम। सचमुच ही मेरे वक्ष पर फैली हुई मनुष्य जाति का चातुर्य देखकर मुझे आश्चर्य होता है और प्रसन्नता भी—कितने योग्य हो तुम सब। एक समय था जब मेरी गोद में पले हुये जीव भी मुझको छोड़कर चाँद और सितारों की पूजा करते थे वे यह नहीं समझ पाते थे कि उन्हीं की भाँतिमैं भी हूँ।

युवक : "देवी मैं आपका दुःख जानने आया हूँ। मैं आपकी हर सम्भव सेवा करूँगा, क्या आप यह भूल गईं कि कभी लिंकन, नेहरू, गान्धी ने आपका दामन पकड़ा था आपकी सेवा की थी, आपका सम्मान बढ़ाया था, उसी प्रकार मैं भी आपकी सेवा करना चाहता हूँ।"

धरती माँ : मैं उनको कैसे भूल सकती हूँ वे ही तो मेरे सच्चे सपूत हुए हैं और मैं उनको भी नहीं भूल सकती हूँ जो मुझे चाँद का रहस्य समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। जो मेरे सीने पर बिलखते हुए जीवों की सेवा कर रहे हैं।"

युवक : "देवी क्या मैं फिर आपसे पूछू कि आपको क्या दुःख था"

धरती माँ : "ठहरो ठहरो सुनो यह कैसी आवाज आ रही है"

[कहीं दूर से छम-छम की आवाज आती है जो कि पास आती आती जा रही है इसी समय नेपथ्य से गड़गड़ाहट की आवाज आती है—चीख पुकार मच जाती है—बचाओ-बचाओ स्वर उभरते हैं और धरती फिर गिर पड़ती है, घुटनों में सिर छुपा लेती है और कराहने लगती है। युवक घुटने टेक कर उसे उठाने का प्रयत्न करता है तो उसके हाथ में मिट्टी आती है—वह हैरानी से उस मिट्टी को बिखेर देता है फिर एकाएक उसकी आँखों में चमक आ जाती है वह झुकता है और मुट्ठी भर मिट्टी को उठाकर प्रण करता है]

युवक : "मैं तुम्हारे सब दुःख दूर करूँगा धरती माँ" प्रण करता हूँ माँ तेरे गौरव की रक्षा में मिट जाऊँगा, तेरी लाज रखूँगा चाहे

स्वयं वलि हो जाऊँ। आशीर्वाद दे माँ मुझे कि मैं तेरी रक्षा कर सकने में समर्थ होऊँ। माँ मैं शपथ लेता हूँ, हे मेरी जननी ! जव तक खून की एक बूँद भी मेरी रगों में है, तुझ पर आँच नहीं आने दूँगा।

[उभरती हुई कराहें एकाएक शान्त हो जाती हैं और बांसुरी की मधुर धुन गूंज उठती है। छम-छम की आवाज उसी प्रकार आती रहती है। एकाएक बीच का पर्दा फट जाता है उसके पीछे भारत माता नजर आती है। भारत का बहुत वड़ा नक्शा पिछले पर्दे पर अंकित है। भारत माँ बोलने को होती है तो सितार के तार झनझना उठते हैं और उसी में से बहुत प्यारी सी आवाज उभरती है]

भारत माता : शावाश मेरे वच्चे—गर्व है मुझको तुझ जैसे वालक पाकर—मेरा मस्तक तुम जैसे शूरवीरों से ही ऊँचा रहेगा। धरती तुम ....यहाँ आओ (**धीरे धीरे धरती अपना सिर उठाती है—फिर श्रद्धा से अपना सिर झुका लेती है फिर उठने का प्रयत्न करती है तो युवक उसे सहारा देता है।**)

भारत माता : धरती वहुत दुःख हो रहा है तुम्हें अपना विध्वंस देखकर—कि तुम्हारी गोद में पले हुए बालक ही तुम्हारे वक्ष पर खून की होली खेल रहे हैं—तुमसे वह रक्त सँभाला नहीं जा सका और तुम कराह उठीं। लेकिन यह रक्त वीरों का है जो सत्य के लिए लड़ते हैं जब तुम इस खून को अपने में समाओगी तभी तो ऐसे वीर पैदा होंगे जो हमेशा सत्य के पथ पर चलेंगे। सत्य के आसरे पर ही तो तुम धरती हो और उसी के भरोसे पर मैं हूँ और ये सब हैं जो मेरे आँचल के साये में खड़े हैं। धरती यहाँ पर मेरे आँचल का साया है जो सदा रहेगा—तभी तो यहाँ के लोग सत्य का दामन कभी न छोड़ेंगे—अत्याचार के आगे कभी न झुकेंगे। धरती इनका खून आंसू वहाने और कराहने के लिए नहीं—सत्य की जोत जगाने के लिए बहता है।

(**युवक की ओर देखकर**) आओ मेरे बच्चे ! मेरे पास आओ मैं तुम्हें आशीर्वाद दूं—गीता का पाठ पढ़ाऊँ और रण में जाने के लिए तिलक

लगाऊँ, मेरे आँचल की लाज रखना। धरती तुम मेरे आँचल के साये में सदा लहलहाती रहोगी।

[फटा हुआ पर्दा जुड़ जाता है, छमछम की आवाज दूर होती जाती है। एक बार फिर गड़गड़ाहट की आवाज होती है किन्तु धरती कराहती नहीं मुस्कुराती हुई कहती है।]

धरती मां : जाओ युवक अपना कर्त्तव्य पूरा करो—मेरा दर्द पूरा हो गया। आज मुझे गर्व हो रहा है अपने आप पर; तुम पर और अपने सब बच्चों पर! मुझे भरोसा है कि तुम मेरे कष्टों को दूर कर सकोगे।

[युवक घुटने टेक कर प्रणाम करता है; पुष्प वर्षा होती है—पर्दा गिरता है।]

●

लौकिक प्रेम का रूप

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च॥

—भर्तृहरि (श्रृंगार शतक १)

[जिसके ध्यान में मैं सर्वदा मग्न रहता हूँ, वह मेरे प्रति उदासीन (विरक्त) है। वह किसी अन्य पुरुष की अभिलाषा करती है, जो कि किसी अन्य (स्त्री) में आसक्त है। (विडम्बना यह है कि) एक अन्य स्त्री मेरे विरह में (निरन्तर) सूख रही (जल रही) है उस स्त्री को, उस पुरुष को, (उस) कामदेव को, इस स्त्री को और मुझे धिक्कार है।]

गाय-गीत

कृष्णा कौल (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

हृदय में लालसा उठती है तुम पर गीत बन जाये।
मधुर नवनीत बन जाये, सरसता सार पा जाये।
सबल हो भारती अपनी, पराजय जीत बन जाये।
मनुज का मीत बन जाये कि तुम पर गीत बन जाये।

मगर, आश्चर्य है, तुम पर न कवि क्यों ध्यान दे पाया।
न निज को गान दे पाया, न जग को प्राण दे पाया।
सही है वह नये युग के लिये नव मान दे पाया।
मगर जो दान देना था, नहीं वह दान दे पाया।

रँगीले नव सुमन में आज सौरभ हीनता मिलती।
तुम्हारे दूध में सत्-काव्य की अभिव्यंजना मिलती।
कि जिसमें ठोसता खोये बिना द्रव-भावना मिलती।
युवक, शिशु, वृद्ध सबको तृप्ति मिलती रंजना मिलती।

तुम्हें हम दीन के हर रोग का प्रतिकार कह सकते।
सहज उपचार कह सकते, सुलभ व्यापार कह सकते।
तुम्हें निष्काम नित-नव दान का अवतार कह सकते।
तुम्हें संक्षेप में आदर्श माँ का प्यार कह सकते।

मगर तुम आज, आश्रयहीनता साक्षात सी फिरतीं।
सड़क, दूकान घर घर भूख के आघात सी फिरतीं।
अगर फिरतीं, विवशता के सहज उत्पात सी फिरतीं।
इसी से प्रार्थना अपनी, मनुज नव प्रेरणा पाए।

मनुजता यदि नहीं, उसका सही पर्याय आ जाए।
विरसतम जिन्दगी में फिर सरस अध्याय आ जाए।
मनुज का गीत बन आए, कि तुम पर गीत बन जाए।

●

कंजूस की दुर्गति

जो लोग अल्लाह के दिये फ़ज्ल में बुख़्ल (कंजूसी) करते हैं, वे यह गुमान न करें कि यह उनके लिए बेहतर है। नहीं, बल्कि यह उनके लिए बुरा है। क़यामत के दिन वह माल जिसमें उन्होंने बुख़्ल किया था, तौक बनाकर उसके गले में डाला जायगा।

—क़ुर्आन शरीफ़ (सू—३; आयत—१८०)

बिखरे बिखरे बादल

बीना डुल्लू (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

कभी-कभी रमा को स्वयं भी प्रतीत होता था कि वह अपनी आयु से ज्यादा बड़ी हो गई है। जब वह आठवीं में थी तो दसवीं कक्षा की लड़कियों की तरह बातें करती थी। और नवीं में आने के बाद तो उसे ऐसे लगता जैसे बिलकुल बड़ी दीदी की तरह कालेज में पढ़ने लगी हो। उन्हीं की तरह उसने अपनी डायरी लिखनी आरम्भ की थी। उन्हीं की तरह वह 'मूडी' हो गई थी। उन्हीं की तरह घण्टों आइने के सामने बैठ कर श्रृंगार करती रहती। कई बार माँ ने उसे टोका तो उसे बुरा लगा।

'हुँ, दीदी को तो कुछ कह नहीं सकतीं, मुझे डाँट देती हैं।'

मन ही मन बड़बड़ाकर वह चुप हो गई। लेकिन उस दिन वह फट पड़ी जिस दिन दीदी ने उसके लिये नया फ्राक बनाया।

''मैं नहीं पहनती फ्राक। खुद तो अच्छी-अच्छी साड़ियाँ ले आती हैं, मेरे लिए यह फ्राक बना दिया है।'

'बेबी ! तू बड़ी हो जाए तो—'

'बेबी, बेबी, मत पुकारा करो मुझे। यह मेरा नाम नहीं है।'

'अच्छा रमा जी आप बड़ी हो जायेंगी तो साड़ी भी ला देंगे।'

'मैं अभी छोटी हूँ ? नवीं मैं पढ़ती हूँ।'

दीदी हंस पड़ी और वह पैर पीटती हुई अन्दर चली गई।

दीदी पता नहीं अपने आप को किस बात में बड़ा समझती हैं। वह उससे अच्छी तरह डायरी लिख लेती है। उससे ज्यादा प्यार भरी बातें

कर सकती है। सतेश की तो शक्ल भी अच्छी नहीं। ऐसी ऊँची नाक है कि माथे से पसीना पोंछा जाये तो हाथ टकरा जाये। वह जिसे प्यार करती है वह तो लाखों का चहेता है। सचमुच में फिल्मों का हीरो है। सतेश तो उसके प्रेमी की नकल ही करता है। पल भर तो उसे लगा जैसे दीदी तो कुछ भी नहीं। सतेश और दीदी तो बस धर्मेन्द्र और उसकी झूठन हैं। इस विचार से उसे बड़ा संतोष हुआ। यही सोचते-सोचते उसे धर्मेन्द्र की याद आई और वह आसमान पर बिखरे-बिखरे बादलों के टुकड़े जोड़ने लगी, उन्हें मानों हार में पिरोने लगी।

कितनी बार वह विद्यालय से भाग-भागकर अपने प्रेमी से मिलने गई थी। सातवीं में थी या आठवीं में जब उसने 'बन्दिनी', देखी थी। हाय! कितना अच्छा लगता था उसमें धर्मेन्द्र। पूरा डाक्टर लगता था—उसका वश चलता तो वहीं भागकर पर्दे पर उसका हाथ पकड़ लेती। उसने सोचा था कि वह जब धर्मेन्द्र से मिलेगी तो अवश्य उसे एक पूरी बाहों वाली जर्सी बुनकर देगी, जैसी प्रायः डाक्टर लोग पहना करते हैं और फिर 'पूजा के फूल' में जब उसने धर्मेन्द्र को धोती पहने भी देखा, तो उसके रहे-सहे बन्द भी टूट गए। उस दिन से तो वह बिल्कुल ही लट्टू हो गई थी। एक दृश्य में जब धर्मेन्द्र को अपराधी ठहराया जाता है तो उसे यही डर लगा कि कहीं धर्मेन्द्र को फाँसी का दण्ड न मिले, और वह जोर-जोर से चीखने लगी। उसे तो तब मालूम हुआ, जब साथ की सीट पर बैठी उसकी सहेली ने उसे झंझोड़ा। चलचित्र की अभिनेत्री 'मालासिन्हा' को देखकर वह घृणा से भर जाती थी, पर उसे इस बात से तसल्ली हुई कि अन्त में 'मालासिन्हा' धर्मेन्द्र को पा नहीं सकती है।

वह बिस्तर से उठी और जाकर मेज की दराज से अपनी डायरी निकाली। डायरी में 'काजल' की Booklet पड़ी थी। पुस्तिका के ऊपर धर्मेन्द्र और मीनाकुमारी का धुँधला सा चित्र था। उसने दीदी की अलमारी से कैंची निकाली और मीनाकुमारी का चित्र काटकर पृथक कर दिया। फिर उसे फाड़कर खिड़की से बाहर फेंक दिया। धर्मेन्द्र के चित्र को चूमा, उसके बालों पर हाथ फेरा। चित्र को डायरी में रखा और डायरी पर सिर रखके फिर बिखरे-बिखरे बादलों के टुकड़े पिरोने लगी।

कब से वह इन बादलों के टुकड़े जोड़ रही थी। लेकिन बादल थे कि

बार-बार बिखर जाते थे, न वरसते थे, न जुड़ने में आते थे। कहाँ तक वह इन बादलों को जोड़ती जाये, पिरोती जाये। काश ! वे एक बार जम कर बरस जायें ताकि उसका कलेजा ठंडा हो जाए।

काश ! धर्मेन्द्र एकबार उसे पत्र लिखे—उसने सोचा—जैसे सतेश दीदी को लिखता है। वह तो कुछ भी नहीं। धर्मेन्द्र जो लिखेगा वह तो और कोई लिख भी नहीं सकता। उसने कई बार उसके लिखे हुये पत्र फिल्मों में सुने थे। उसने डायरी निकाली और धर्मेन्द्र के नाम एक और पत्र लिखने लगी।

बेबी की परीक्षा के पश्चात एक दिन उसके मामा जी उसके घर आये। उन्हीं दिनों धर्मेन्द्र अपनी एक फिलम की शूटिंग के लिये श्रीनगर आया था। मामा जी शूटिंग देखने प्रतिदिन जाया करते थे। यह सुनकर बेबी ने उनसे कहा—'आज मुझे भी साथ ले चलिए ना।

'चलो तुम भी चलो।'

'यह क्या करेगी जाकर।' दीदी ने कहा।

'बेबी, आटोग्राफ लेगी।'

'इसे बेबी न कहिये मामाजी, नाराज हो जायेगी। अब यह बड़ी हो गई है।'

दीदी हंस रही थी। वह फिर दीदी से चिढ़ गई।

जब धर्मेन्द्र प्यार-भरी नजरों से उसकी तरफ देखेगा, तब पता चलेगा वह कितनी बड़ी हो गई है। वह तैयार होने के लिये अन्दर चली गई। देर तक शृङ्गारपट के सामने बैठी रही। जब निश्चित स्थान पर पहुँचे तो धर्मेन्द्र और शर्मिला टैगोर एक रोमान्सपूर्ण दृश्य का रिहर्सल कर रहे थे। सहमी-सहमी सी वह एक तरफ खड़ी रही। धर्मेन्द्र शर्मीला का हाथ पकड़ कह रहा था—'बेला अब संसार की कोई भी शक्ति तुम्हें मुझसे छीन नहीं सकती। मैंने सदा-सदा के लिये तुम्हें पा लिया है। बताओ मेरे साथ चलोगी ?' और बेला ने प्यार से 'हाँ' कह दिया।

'हूँ' रमा मन में बड़बड़ाती रही।

शाट समाप्त हुआ तो मामा ने कहा, बेबी ! आओ चलो। मैं धर्मेन्द्र से तुम्हें मिला दूँ। आटोग्राफ ले लेना।'

'नहीं मुझे नहीं लेना आटोग्राफ, मुझे नहीं मिलना किसी से' वह चिढ़ कर बोली।'

'क्या हो गया ?'

'कुछ नहीं।' यह कह कर वह बाहर चली गई।

जब सब वापिस लौटे तो वह सीधी अपने कमरे में गई। दराज से डायरी निकाली। डायरी में से धर्मेन्द्र के चित्र को निकालकर उसे फाड़कर, खिड़की से बाहर फेंक दिया।

'जाओ-जाओ ! अपनी बेला के साथ, तुम भी जाओ।' यह कहकर उसने डायरी फाड़ी और उसे भीं खिड़की से बाहर फेंक दिया। और बिस्तर पर गिर कर देर तक फूट-फूटकर रोती रही। आसमान में सारे बादल तितर-बितर हो गए थे—चमचमाती धूप बरस रही थी।

●

जकर हिरदय जतहि रातल, से धसि ततहि जाए।
जइओ जतने बाँधि निरोधिअ निमल नीर थिराए॥

[जिसका हृदय जिसके प्रेम में रंगा होता है (जिधर उसका रुझान होता है) उधर चला ही जाता है। पानी को चाहे जितना रोकने का प्रयत्न किया जाय वह ढाल की ओर जाकर की रुकता है।]

—विद्यापति

'नि-वेदन'

रत्नीकुमारी रैना (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

प्राण मिलना औ बिछुड़ना
प्यार का श्रृङ्गार सा है।

हृढ़ पथिक ने यह न जाना
राह में मरु-प्यास भी है
चन्द्रिका की विमल किरणों
में विरह - आभास भी है
सृष्टि का तो फूल में भी
शूल कुछ उपहार सा है

कुसुम ने प्रस्फुटित होते ही
मधुप को दे निमन्त्रण
कर दिया पल मात्र में
अपना हृदय - सौरभ समर्पण
प्यार का पहला चरण तो
हृदय पर अधिकार सा है।

पूछते थे कब मिलेंगे—
खगखगी के नयन गीले

रात के अन्तिम प्रहर में
प्रणयिनी के पाश ढीले
बिछुड़ने के बाद बनता
कूल भी मँझधार सा है

सिन्धु की ले लालसा
सरि ने न जाना क्या पतन है
औ, चकोरों ने अंगारे छू
न जाना क्या जलन है
साधना की प्यास में तो
गरल भी रसधार सा है।

'चन्द्र' के होते उदय ही
साँझ ने आंचल समेटा
यामिनी ने लाज से
चूनर रूपहला ले लपेटा
लाज का तो अर्थ ही—
कुछ प्यार कुछ मनुहार सा है।

●

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेति पराजितो।
उपसन्तो सुखं सेति हित्वा जयपराजयं॥

[विजय वैर को उत्पन्न करती है, पराजित (पुरुष) दुःख की (नींद) सोता है; (राग आदि दोष जिसके) शान्त (हैं), वह पुरुष जय और पराजय को छोड़ सुख की (नींद) सोता है।]

—धम्मपदं; सुखवग्गो।

वह आ गया

नन्सी कौल (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

आरम्भ में मैं उसके बारे में बिल्कुल नहीं सोचती थी। उसके आने के बारे में मैंने कभी भी नहीं सोचा था। मैं सब प्रकार से निश्चिन्त सी हो गई थी सर्वत्र केवल प्रसन्नता का साम्राज्य सा छाया हुआ दिखाई देता था। सारा दिन रँगरेलियाँ मनाने में व्यतीत हो जाता था और रात्रि सुख की निद्रा में व्यतीत होती थी। परन्तु कुछ समय के पश्चात् ही जब मुझे सूचना मिली कि वह अब शीघ्र ही आने वाला है तो मेरी निश्चिन्तता न जाने कहाँ लुप्त हो गई। मैं बेचैन सी रहने लगी।

अब मैं हर समय उसी के विषय में सोचती थी। मुझे यह ज्ञात था कि वह आयेगा। उसका नाम सुनकर ही मैं गुमसुम सी हो जाती थी। कभी मनोरंजन के लिए कोई उपन्यास या नाटक आदि पढ़ने बैठती तो ऐसा प्रतीत होता था मानो पुस्तक के पृष्ठों पर केवल उसी का नाम लिखा हुआ है। मस्तिष्क से उसका विचार निकाल देना चाहती थी, परन्तु वह किसी भी प्रकार से नहीं हटता था। पहले जिस कमरे में मधुर स्वप्नों में मेरी रात्रि व्यतीत होती थी उसी कमरे में अब मारे घबराहट के मेरा दम सा घुटने लगता था। तारे गिनते-गिनते सारी रात्रि व्यतीत होने लगी थी। उसके आने का नाम क्या सुना मानो किसी ने मेरे स्वछन्द हृदय पर कोई बोझ सा रख दिया था। भूख भी जैसे मुझ से रुष्ट हो गई थी। पहले भोजन-भट्ट विदूषक की भाँति भोजन करने में जुट जाती थी, पर अब भोजन में भी वह स्वाद नहीं आता था। घर में सब मेरे इस परिवर्तन से चकित से हो गए थे, केवल पिता जी जान गए थे कि उसके आने के समाचार ने यह सारा परिवर्तन किया है।

आखिर दिल की बात कहाँ तक छिपाई जाती है। पहले किसी से उसके विषय में कुछ कहना मैंने अनुचित समझा क्योंकि मुझे भय था कि कोई यह न कहे कि मैं केवल उसी के विषय में सोचती रहती हूँ। परन्तु जब मैं तंग आ गई तो एक दिन अपनी एक सहेली से सारा हाल कह बैठी, परन्तु साँत्वना देने की जगह उसने मजाक करते हुए कहा, "वह तो आयेगा ही और तुम्हें आनन्दित करेगा। भीतर-भीतर प्रसन्न हो और ऊपर से दिखावा करती हो" इससे मेरा और भी बुरा हाल हो गया।

कभी-कभी मुझे लगता था कि वस्तुतः मेरी सम्पूर्ण आशाएँ उसी पर निर्भर हैं। 'वह कैसा होगा' इस विषय में जब मैं सोचने लगती तो इस संसार का ध्यान ही नहीं रहता था। इन्द्रधनुष की तूलिका से मैं कल्पना के मानस पटल पर उसका चित्र अंकित करने लगती। मैं सोचने लगती कि उसका आना मेरे लिए सुखकर ही होगा। परन्तु जिस प्रकार वायु का एक झोंका आता है और शरीर को रोमाँचित करता हुआ चला जाता है उसी प्रकार मेरी ये सुन्दर और मधुर कल्पनाएँ क्षण भर में मुझे आशा की क्षीण रेखा के स्पर्श से रोमाँन्चित कराके शून्य में विलीन हो जाती थीं। मुझे लगता कि वायु से हिलते हुए फूल सिर हिला-हिला कर मानो मेरा मजाक उड़ा रहे हों। मैं फिर उदास होकर उसके शीघ्र आने के लिए ही भगवान से प्रार्थना करने लगती, परन्तु उसके आने के क्षण को सदा टालना चाहती थी—एक अजीब-सी घबराहट रहती थी।

मुझे विश्वास होने लगा कि उसे जिस दिन आना है वह अवश्य आयेगा, फिर क्यों फिक्र करूँ!

ज्यों-ज्यों उसके आने का दिन निकट आता गया, मेरे घरवाले मुझे चिढ़ाने लगे। मेरी भाभी मुझसे कहती, "कब वह आ जाये और हमें मिठाई मिले।" इन बातों से मेरा मुँह और भी लटक जाता था और में घबराकर बाग में जा बैठती। वहाँ बैठ कर मेरा मन फिर उसी के विचारों में खो जाता मैं बार-बार सोचने लगती कि क्या उसके आने पर मैं उसे निःसंकोच स्वीकार कर सकूँगी? कहीं वह मुझे और मेरे घरवालों को दुखित न करे? इसी प्रकार के विचारों में लीन होते हुए जब वृक्षों पर बैठे मधुर कण्ठ वाले पक्षियों के कलरव से मेरा ध्यान भँग हो जाता तो मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे ये पक्षीगण भविष्य की चिन्ता करने के कारण वर्तमान सुख से वंचित

रहने वाली मानव जाति का उपहास कर रहे हों। यह देखकर मुझे स्वयं अपने पर क्रोध आता, परन्तु उसके आने की प्रतीक्षा ने मुझे इतना अस्त-व्यस्त कर दिया था कि मैं आत्मविश्वास ही खो बैठी थी।

कहते हैं कि इन्तिजार में बड़ा मज़ा है परन्तु मुझे उसके इन्तिजार में जो मज़ा मिला वह तो भगवान ही जानता है।

अन्त में मेरी चिन्ताओं और दुष्कल्पनाओं को पराजित करता हुआ मेरी सफलता की सूचना लेकर मेरे 'रिजल्ट का वह दिन' आ ही गया।



"बुद्धिमान व्यक्ति अपनी मान्यताओं एवं विचारों का इसी सरलता एवं निर्वि-विरोध रूप से वहन करता है जैसे गुब्बारे वाला, असंख्यों रंग-बिरंगे गुब्बारों को मेले की भीड़ में लेकर घूमता है।

घमण्डी मूर्ख उन्हें एसे खेंचेड़ता फिरता है जैसे कोई भीड़ में से एक भारी भरकम, अपने चढ़ने की, सीढ़ी को लेकर जा रहा हो"।

—पॉल एलड्रिज ('हॉर्न्स अव ग्लास')

विभवे भोजने दाने तिष्ठन्ति प्रियवादिनः।
विपत्तौ चागते ऽन्यत्र दृश्यन्ते खलु साधवः॥

[प्यारी बातें बनाने वाले केवल ऐश्वर्य, भोजन और दान के समय ही रहते हैं और आपत्ति आने पर तो वे प्रियवक्ता अन्यत्र चले जाते हैं। केवल साधु ही समीप दीखते हैं।]

हनुमन्नाटक १९—१६

लद्दाखी प्रेम-गीत

दुर्जय छ़्वांग (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

छुंगतुस सोनम चन पो, यंग यंग यितु योंग सोंग।
न तंग छुंगतुसी तुसला, सेम्त्रा चियंगस योतपिन।

न तंग छुंगतुसी तुसला, सेम्बा गंङयंगस योतपिन।
छेवे डलदु छुतपा सेमछेर मंगपो योंग सोंग।

न तंग छुंगतुसी तुसला, रिखाला यंगस्पा सेसपिन।
ते गुन यितु योंगस्पा छिमे याछु डुगसोंग।

तेबो छुंगतुस यिनोग, सेम्बा चियंगस योतपिन।
रंगयुल जुंगला दुगस्ते खेत की यितु मायोंगस।

मियुल जुंगला सोंगबा, खेतनी यितला टन सोंग।
ज़मो सोदे चनजिक, रंगयुल जोत्तिन जुगसंग।

बुछ़ा सोदे मेतपो, जनगी युल ला लुस सोंग।
जन ता नतंग निस्का मिछे यंग यंग जालपीन।

यिन नंग नाती छुंगतुस, यंगयंग लोकसे मिथोप।
मशी छेरिंग जुगस्ना, यंग यंग जलबे मोसलम।

(बीते दिनों की फिर से याद आई, जब कि हम दोनों एक साथ क्रीड़ाएँ किया करते थे। बचपन में तो हमें कोई ग़म न था और प्रसन्नता-पूर्वक दिन बिताते थे। पर बड़ा होने पर कुछ ऐसा दुख मेरे ऊपर बीत रहा है जिसका वर्णन मैं कर नहीं पाता और तुम भी मेरे दुख, दर्द को जानने की कोशिश मत करना; मैं जब भी अपने आपको दुख में पाता हूँ तो उसी समय क्षण भर के लिए अपने बीते दिनों का स्मरण करता हूँ जिससे मुझे कुछ सन्तोष प्राप्त होता है। मैं अश्रु बहा-बहा कर अपने दुःखित हृदय को हलका कर लेता हूँ। मेरा रोना तो सबने देख लिया पर मेरे इन अश्रुओं का मूल्य क्या है, कारण क्या है जिस के नाते से मैं रो रहा हूँ, उसको किसी ने जानने की कोशिश नहीं की।

मैं तुम से दूर हूँ। इसी कारण मेरे मन में विरह की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। इस को बुझाने का कोई उपाय नहीं।

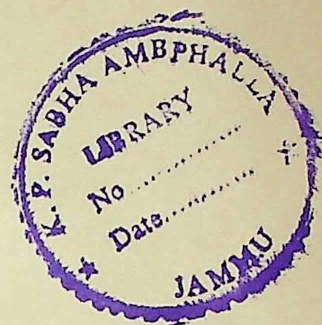
विरह की यह अग्नि जो मेरे लिए एक ज्वालामुखी का प्रतीक बन गयी है वह तो तभी शान्त हो सकती है जबकि तुम मेरे शून्य संसार में आकर उसे फिर बसाओगी। तुम मुझ से दूर रह कर भी दूर नहीं हो। मेरी हर सांस में तुम बसी हुई हो।

अकस्मात् जीवन में एक ऐसी घटना घटी कि जिसके कारण मुझे तुम से बिछुड़ कर दूर जाना पड़ा। हम जीवित रहें तो फिर मिलन होगा। परन्तु हमारा बहुमूल्य बचपन तो फिर से आ नहीं सकता; जिस बचपन में हम साथ रहते हुए अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते थे)

●

सच कह गये हैं भाई घूरन।
दुनियाँ रोटी है, मज़हब चूरन॥

—अकबर



गद्य-काव्य

नीना कौल (एम० ए० पूर्वार्द्ध)

अन्तर में हूक सी उठती है—दूरसे आती हुए लहरें मानो तट से अपनी व्यथा कहने आती हैं; परन्तु पवन का वेगपूर्ण झोंका तट से लहर को विलग कर देता है—वह भटकती है—आवर्त्त में फँस कर घूमती है, फिर से किनारे की ओर उमगती है।

तट बेबस टुकुर-टुकुर देखता रह जाता है; उसके समाने ही उसकी प्रेयसी लहर को सागर नष्ट कर देता है। वही सागर जिसकी सीमाएँ वह स्वयं बाँधता है; तट से ही तो सागर की मर्यादा है। किन्तु सागर, अपने साथी पवन के साथ मिल कर लहर को मिटा देता है, उसे तट से दूर कर देता है;

किन्तु; किन्तु लहर का अस्तित्व तो सागर से ही है, यह भी कभी तट ने सोचा है? और बिना सागर के तट कैसा? ठीक है; परन्तु लहर बिचारी का क्या दोष? फिर भी वह तट और सागर के बीच भटकने में ही अपना सारा अस्तित्व व्यतीत करती है—किन्तु वह न तट की ही हो पाती है और न सागर की। एक ने उसे जन्म दिया है-दूसरे से वह आश्रय चाहती है। जब जन्मदाता और आश्रयदाता में ही अनबन हो तो लहर बेचारी क्या करे? क्या करे? कौन कह सकता है? यह शाश्वत व्यापार सनातन काल से चला आया है। इसे न सागर समझता है, न तट।

पर कभी किसी ने लहर से भी पूछा है कि वह क्यों भटकती है?

●

डोगरी प्रेम-गीत

अनुवाद : स्वर्णलता सूरी (एम० ए० उत्तरार्द्ध)

देश साड़ा सुवाना, सोनियाँ देशे दीयांदारां,
 नी जायां गोरिये ते नीं जायां शोरुआ,
साड़े कने मिली जायां शपी चोरिये,
आणं गीयाँ नइयां बहारा,
सोनियां देशे दीयां दारा।

हट परदेस मऊआ अऊँ आँ आयाणी,
साड़े कने मुड़ गल नईयों लाणीं,
पवणं गीयां डाडीयां मारा,
सोनियां देशे दीयां दारा।

ऊचीयां ने डारा वंसरी नीं बजायां,
साड़े डंगरे की तूं बखीआँ नीं लायां,
चरदीयां नीलियां गासाँ,
सोनियां देशे दीयां दारां।

दुध रिड़कानियें गजरे लिशकानियें,
रुप कोलों मखनें की शरमानियें,

आवण गीयां नईयां बहारा
सोनियां देशे दीयां दारा।
कंघी जो बानियें बाल लिशकानियें,
बाल तिले दीयां तारां,
सोनियां देशे दीयां दारां।

(प्रस्तुत गीत एक पहाड़ी लोक गीत है जिसमें एक युवक का अनायास ही मेल एक अनजान ग्रामीण युवती से हो जाता है। वे एक दूसरे से अनभिज्ञ हैं। दोनों अपनी-अपनी गायों को चराने के लिए पहाड़ पर ले गये होते हैं। युवक कहता है :—

हमारा देश बहुत महान है। जिसके पहाड़ तथा सरिताएँ बहुत सुन्दर हैं। सरिताएँ पहाड़ों से लगलग कर उनका आलिंगन कर रही हैं, यही हमारे प्रेम के प्रेरणा-स्रोत हैं। लेकिन युवती समाज के भय के कारण इस प्रकार उत्तर देती है :—

हे परदेशी राही मेरे रास्ते से तुम दूर हो जाओ क्योंकि मैं अबोध बालिका हूँ। मेरे साथ तुम फिर कभी भी प्रेम की चर्चा मत छेड़ना क्योंकि हमारी सभ्यता हमें ऐसा करने से रोकती है; क्योंकि इस समाज में लोग संकुचित प्रकृति के हैं। यदि मैं तुमसे प्रेम करूँगी तो घर से मुझे दण्ड दिया जायगा। युवती फिर कहती है :—

तुम अपनी मधुर बंसी की ध्वनि को बंद कर दो क्योंकि इसी ध्वनि के आकर्षण में फँस कर मेरी गायें तितर-बितर हो गई हैं। जब युवक उसकी गायों को एकत्र करने लगता है तो युवती उसे ऐसा करने से मना कर देती है और कहती है कि मेरी गायों को ऐसे ही चरने दो।

वह युवक उस युवती की रूप-प्रशंसा करता है :—

हे गोरी जब तुम मथानी लेकर दूध बिलोती हो तो उस समय तुम्हारे हाथों में पड़ी हुई चूड़ियाँ झनझना उठती हैं और बारबार हाथ हिलाने से वे चमत्कृत हो जाती हैं, और तुम्हारा मुखड़ा इतना सुन्दर है कि माखन भी उससे हीन प्रतीत होता है।

तुम जब कँघी करती हो तो तुम्हारे रेशमी, पीत-वर्ण के घने बाल इस प्रकार चमकते हैं जैसे तिले की तारें चमक रही हों।)



रुपहली शृङ्खला

फूलकुमारी मोज़ा (एम० ए० उत्तरार्द्ध)

जीवन-कारावास में लटकी,
भाव-बुद्धि की रुपहली शृंखला;
चैतन्य-मन-पक्षी के पंख थे
सहज आकर्षण से जकड़े हुए।
शृंखला की रंगीन कड़ियाँ,
मनन, अनुभवों और
कटु-मधुर स्मृतियों के झिलमिलाते धागों से निर्मित।
जीवन-कारावास की अटूट शृंखला।
अबोध मन-पक्षी इससे खेलता,
कड़ियों के बन्धन को देखता-सहलाता;
अनजाने में, रंगों में सुधबुध खो,
स्वयं अपने को बँधवाता।
शृंखला के असह्य बोझ से
बोझिल हो—छटपटाता, खोलना चाहता;
जकड़ और भी दृढ़ होने पर
कड़ियों में फँसता और कराहता।
कोई खोलने जब आता,
इसी में बँध चोट खाता;

व्यर्थ तर्क-उलझन में पड़ता !
श्रृंखला के मधुर भार से
विस्मृत होने को कहता,
न होने पर
अवचेतन में अवगुंठित हो-जागता सोता ।
समय-असमय इसकी खनक
मधुर पीड़ा का संचार करती
मीठे विष से तरल हो
अन्तस को घुलाया करती ।
है वह निर्दयी कितना—
श्रृंखला को हिला; अन्तस में सोये,
अर्ध-विस्मृत,
राग-तन्तुओं को जो हिलाता ।



दुर्जन पद्धति

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा ।
स्वजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धिमिदं हि दुरात्मनाम् ।।

[अकरुण (स्वभाव), अकारण लड़ाई करना, पराये धन तथा परायी स्त्री की अभिलाषा करना, सज्जनों तथा (स्वयं) अपने सम्बन्धियों से ईर्षा, दुष्टों की ये सहज विशेषताएँ हैं ।]

—भर्तृहरि (नीतिशतक ५०)

उपलब्धियाँ

स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, कश्मीर मण्डल, को इस बात का गर्व है कि जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय को प्रथम दो पीएच० डी० विभाग ने ही दिये हैं। आचार्य पं० जगन्नाथ तिवारी के निर्देशन में शोध-कार्य करके **डा० (श्रीमती) मोहिनी कौल** ने "लल्लेश्वरी और कबीर का तुलनात्मक अध्ययन" नामक विषय पर, तथा **डा० मुहम्मद अयूबखाँ** ने "निरालाके काव्य में दार्शनिकता" नामक विषय पर सन् १९६६ के दीक्षान्त समारोह में पीएच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

राजकुमारी राज़दान (विभागीय हिन्दी परिषद् की प्रथम मंत्री) ने सन् १९६६ की एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा में सर्व-प्रथम स्थान प्राप्त किया। कुमारी राज़दान ने एम० ए० की पूर्वार्द्ध परीक्षा में भी सर्वाधिक अंक प्राप्त किये थे। उन्होंने केवल एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा में ही सर्वाधिक अंक प्राप्त करने का नया कीर्तिमान स्थापित नहीं किया अपितु सम्पूर्ण कला-संकाय के एम० ए० के विद्यार्थियों में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए।

फूलकुमारी मोज़ा(एम० ए० उत्तरार्द्ध) ने १९६६ की एम०ए० (हिन्दी) की, पूर्वार्द्ध की परीक्षा में विश्वविद्यालय के दोनों मण्डलों के विद्यार्थियों में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। कुमारी मोज़ा गत वर्ष हिन्दी परिषद् की उप-मन्त्री थीं और इस वर्ष पूर्वार्द्ध की परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त करने के कारण उन्हें मन्त्री पद पर नियुक्त किया गया है।

एम० ए० (पूर्वार्द्ध) में प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में से बी० ए० की परीक्षा में, हिन्दी में सर्वाधिक अंक,प्राप्त करने के कारण **कुमारी**

नीना कौल एम० ए० (पूर्वार्द्ध) को हिन्दी परिषद् की उप-मन्त्री नियुक्त किया गया।

विभाग में शोध-कार्य करने वाले अनुसंधित्सुओं में सर्वश्रेष्ठ निर्धारित किये जाने के फलस्वरूप **कुमारी सन्तोष ज़ारू** एम० ए० को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की २५० रु० प्रतिमास की छात्रवृत्ति प्रदान की गई। कुमारी ज़ारू 'प्रेमचन्द तथा प्रसाद की नारी-भावना' नामक विषय पर शोध-कार्य कर रहीं हैं।

श्री मोहनलाल बाबू एम० ए० तथा **श्री अमरनाथ** एम० ए० को शोध-कार्य करने के लिये केन्द्रीय सरकार के शिक्षा मंत्रालय से १०० रु० प्रतिमास की छात्रवृत्ति प्रदान की गई। श्री बाबू 'यशपाल तथा राँगेय राघव की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन' पर तथा श्री अमरनाथ 'दिनकर और आज़ाद की कविता कै।तुलनात्मक अध्ययन' पर शोध-कार्य कर रहे हैं।

इनके अतिरिक्त एम० ए० के अन्य १२ विद्यार्थियों को केन्द्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय से १०० रु० प्रतिमास की छात्रवृतियाँ भी दी गईं हैं।



भाग्य

खल्वाटो दिवसेश्चरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वांछन्देशमनतापं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः॥

[एक गंजा सिर पर किरणों के ताप से तपित होकर, धूप-रहित स्थान की इच्छा (खोज) करता हुआ, विधिवश एक नारियल के पेड़ के नीचे (पहुँच) गया। वहां भी एक बड़े नारियल के गिरने से, भड़ाम् से उसकी चाँद फूट गई। आपदायें भी बहुधा उसी स्थान पर जाती हैं, जहाँ अभागा जाता है।]

कश्मीरी गज़ल

मूल : पं० अमरचन्द वली

अनुवाद : रत्नी कुमारी राज़दान (एम० ए० उत्तरार्द्ध)

ह्योतुन युन अंग जख्मन दागदारन
बहारन त्रौव परतन लालज़ारन ॥

घाव भरने लग गये हैं दागदारों के
जोत बिखराई चमन पर है वहारों ने।

अछै पोशन ज़'च़वह्य ह्य चां'ग्यजालन्य
युथुय प्यव च़ोन परतव म्वख्तहारन ॥

"अछपोशों" की किरणों ने की है दीवाली
मुक्ताहारों पर बिखरी है जो जोत तुम्हारी।

कलै वालन छु बोरमुत मलर्यन' यम्ह
छु च़ावान दाम दामय च्वख्तकारन ॥

मदिरा की गागरें भर रही है मधुवाला
पियक्कड़ों को घूँट-घूँट उसने दी पिला।

म्ये क'डनम लोलनारन तालिकिन्य छठ
ब ज़ोलुस बालयारो इन्तज़ारन ॥

आग राग की उठी हुआ मैं रक्तवेश
वालयार, इन्तिजार तेरे में हूँ निःशेष।

जिगर व्य'गलिथ बुज़न छुम खून च'श्मन
तुलन छुस व्यूर सोज़क आबशारन ॥

जिगर पिघल कर आँखों से बन खून बह रहा
झरनों की लय का पराग हूँ उठा मैं रहा।

म्ये ज़ख्मन हन्ज़ फुलय ल'जमच दिलस छम
ब क्याह माज़ै निशातो शालमारन ॥

जख्मों की बौर खिली हृदय बन गया बहार
क्या मानूँ अब मैं निशात या शालमार।

आवारै छुस 'वली' आज़ुर्द खातिर
म्ये गोंडनम लोलनारन रे'ह अमारन ॥

हूँ ग़मगीन "वली" अब तो मैं आवारा
आग स्नेह की लगी राख हुई आकांक्षा।

'कैसे'

सुदेश आनन्द एम० ए० (भूतपूर्व छात्रा)

प्रिय तुम नभ की चन्द्र-प्रभा,
ग्रन्थि-बन्धन कैसे हो ?
तुम्हारी दूध सी चितवन,
उतरती भूमि पर सकरुण;
निकट रह दूर हो दिन दिन
दूर कर, खींचते फिर हो।
ग्रन्थि-बन्धन कैसे हो ?
चुम्बक की कला,
रंगिणि,
जीवन का तार, बन्धन
तुम्हारे आभार का
मिला मुझको
आश्वासन ।
मेरे स्वप्नों की साम्राज्ञी,
चिर परिचित—
प्रणय की वीन !
मैं तेरी रागिनी
क्यों कर बनू—हे चिर संगिनि ।

फिर भी,
मन तेरी झंकार से अनजान कैसे हो?
निकट रह दूर हो दिन दिन
दूर कर, खींचते फिर हो,
—कहो फिर
ग्रन्थि-बन्धन कैसे हो?



ईर्षालु व्यक्ति अपनी आग में खुद ही जलता है, उसे और जलाना व्यर्थ है।

—शेख़ सादी

× × × ×

शिष्य :—भगवन्, मैं कब ज्ञान प्राप्त करूँगा?
गुरु :—जब 'मैं' नहीं रहेगा।

× × × ×

मानुस प्रेम भयउ बैकुण्ठी, नाँहित काह छार भरि मूँठी।

—मलिक मुहम्मद जायसी

× × × ×

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः

ऋ० ४-३३-११

अध्यवसायी (परिश्रमी) के अतिरिक्त देवता किसी के सखा (सहायक) नहीं होते।

समस्या का हल

नबाब वाजिदअली शाह को गिरफ्तार करके अँग्रेजों ने कलकत्ते में नज़रबन्द कर दिया ! 'अख्तरपिया' के नाम से ठुमरी बनाने और गाने वाले रसज्ञ एवं कोमल-मन नवाव का मन कलकत्ते की उमस-भरी घुटन के रोक-थाम वाले वातावरण में लगता ही नहीं था। मिल्कियत छिन गयी थी स्वास्थ गिर रहा था—नवाव उदास रहा करते थे। सरकार ने उनके मनोरंजन का प्रयत्न किया और एक दिन गोरों की दो पल्टनों के मध्य होने वाला फुटवाल का मैच उन्हें दिखाने का प्रबन्ध किया गया।

अपने तीन-चार मुसाहिवों के साथ नवाब साहब मैच देखने आये। थोड़ी देर उन्होंने बेमन से मैच देखा फिर वगल में बैठे अँग्रेज अफसर से पूछा कि "यह सब क्या हो रहा है ?" अँग्रेज बोला—"वेल, नवाब सा'ब, बोथ पार्टीज़ में इलेविन लोग हैं—हर प्लेयर बाल को कब्ज़ा करके गोल में ले जाना माँगटा, रूल का मुताबिक.........." अब नवाब साहब को मामला असह्य हो गया। अँग्रेज की बात बीच में ही काट कर खड़े होकर बोले "ला-होल-विला-कुव्वत ! बाईस शख्स शोहदों की तरह एक नाचीज़ गेंद के लिए इस शिद्दत की गर्मी में भाग-दौड़ रहे हैं। म्याँ मीर मुँशी, हमारी रियासत चली गई तो क्या हम इतना भी नहीं कर सकते ! बाईस गेंदें खरीद कर फौरन से पेश्तर इन गोरों को बँटवा दो, जिससे ये झगड़ा निवटे। चलो म्याँ ! इन गोरों को ज़रा-ज़रा सी बात पर झगड़ा करने की आदत है—और वो भी इतनी भीड़ के सामने। बेशर्म कहीं के।"

यह कह कर नबाब साहब उठकर चल दिये।

'समझदार की मौत है'

राजकुमारी राज़दान एम० ए० (भूतपूर्व मंत्री, हिन्दी परिषद्)

बात बहुत पुरानी है। कश्मीर के राजा ललितादित्य के दरबार में एक बार मथुरा से उल्लासक नाम के प्रसिद्ध संगीतक आये। पं० उल्लासक ने एक-एक स्वर को सिद्धकरने के लिए तीन-तीन वर्ष तक साधना की थी। उन्हें राजा ललितादित्य से बहुत मान मिला और प्राय: नित्यप्रति संध्या समय राजा संगीत-सभा करते ; किन्तु दरबार में जब भी उल्लासक गाते तो सारे हाली-मवाली, चौकीदार-चौबदार चीख़-चीख़ कर और खूब सिर हिला और मटका कर दाद देते। सारी सभा साधुवादों से गूँज जाती यहाँ तक कि उल्लासक का स्वर भी डूब जाता। अपने को संगीत-प्रिय एवं संगीत का मर्मज्ञ सिद्ध करने के हेतु तथा अपनी रसिकता का दिखावा करने के लिए श्रोताओं में होड़ सी लगी रहती; 'सम' 'बेसम' 'वाह वाह' हुआ करती थी। राजा परेशान थे, चिड़ते भी थे किन्तु स्वयं कला-प्रिय होने के कारण तथा वास्तविक मर्मज्ञों के दिल दुखाने के भय से कुछ नहीं कहते थे ; क्योंकि वे जानते थे कि मूर्खों की उस भीड़ में कुछ संगीत के रसज्ञ भी होंगे ही, समस्या यह थी कि हीरों को काँच के दानों से अलग कैसे किया जाय ! उन्होंने उल्लासक से सलाह की—और उल्लासक ने हल बता दिया।

अगले दिन संध्या को उल्लासक ने 'श्री' राग का आलाप प्रारम्भ किया। गाना आरम्भ होने से पूर्व ही सारे दरबारियों के सिर पर, पगड़ी के ऊपर, एक-एक नारियल स्थापित कर दिया गया। राजा का हुक्म था कि गान के मध्य में जिस के सिर पर से नारियल गिर जायगा, उसका सिर काट लिया जायगा। उल्लासक ने गाना आरम्भ किया- 'सम' पर 'सम' आने लगे किन्तु

श्रोतागण मूर्तिवत् बैठे थे। उल्लासक ने तान और टुकड़े लगाने आरम्भ किये। अधिकांश श्रोता पसीने से लथपथ सीधे तने बैठे थे, उनका ध्यान केवल सिर पर रखे नारियल को साधे रखने में था। जो मर्मज्ञ थे वे धीरे धीरे संगीत के रसप्रवाह में मग्न हो गये और 'सम' आने पर अनायास सिर हिलाकर ताल दे बैठे। उनके सिरों के नारियल लुढ़क कर गिर पड़े; कलाकारों और कला का 'फैशन' करने वालों का भेद स्पष्ट हो गया।

उल्लासक जानते थे कि जो हुनरमन्द हैं, संगीत के मर्मज्ञ हैं, दाद दिये बिना रह नहीं सकते, क्योंकि वे अपने को भूल जाते हैं—जब संगीत में डूबते हैं। जान बचाने वालों को हुक्म हुआ कि अगले दिन से वे संगीत-दरबार में न आयें या दूर बैठ कर चुपचाप सुनें। भावुक मर्मज्ञों को निकट का स्थान दिया गया। इसीलिए कहा गया है कि "समझदार की मौत है"—परन्तु समझदार के लिए इसी प्रकार की मौत में ही जीवन का स्रोत है, आनन्द का स्रोत है। जो उस आनन्द में डूबता है वह तर जाता है; जो 'अनबूड़ा' रह गया मानो उसका जीवन ही वृथा हो गया। इसीलिए रसिक-राज कवि विहारी ने कहा हैं :—

तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग॥

संगीत (एवं वाद्य), कविता तथा प्रेम का मर्म समझने के लिए 'समझने वाला' भावुक, रसज्ञ मन चाहिए नहीं तो 'भैंस के आगे बीन बजाई, भैंस खड़ी पगुराय" यह कहावत चरितार्थ हो जाती है!

भैंस (अरसज्ञ) बीन की अपेक्षा करके अपने पगुराने में (रौंथ करने में) मग्न रहती है किन्तु मनुष्य विना समझे बूझे भी समज-बूझ का दिखावा करने के लिए 'वाह-वाह' करने लगता है; और अपनी 'वाह-वाह' का, आधुनिकतम वस्त्रों की फैशन के समान, दिखावा भी करता है। ऐसे लोगों को देखकर "समझदार की जो मौत होती है" वड़ी पीड़ादायक होती है!

वास्तव में भावुक कलाकर के लिए जितनी पीड़ादायक 'नासमझ' की 'वाह वाह' है उतनी ही पीड़ादायक उसके लिए समझदार-भावुक की चुप्पी है। इसीलिए समझदार-भावुक (चाहे उसे 'भावक' कहिए) की प्रशंसा

की अपेक्षा सब कलावन्तों को होती है, और नासमझ से सब बचना चाहते हैं। एक प्राचीन कवि ने भगवती सरस्वती के प्रसन्न होने पर केवल यह वरदान माँगा था कि "हे माता, अरसिक के सामने मुझे अपनी कविता कहनी पड़े—यह मेरे भाग्य में मत लिखना"। अरसिक (नासमझ) यदि प्रशंसा करे तो कविता दो कौड़ी की हो गई **समझो**—उसी प्रकार यदि समझदार (रसिक) कविता सुन कर चुप रह जाय तो कवि की 'किरकिरी हो गई'! इसीलिए कहा है :—

सरस कवित्त के चित्त कों बेधत द्वै, सो कौन ?
असमझदार सराहिबो, समझदार को मौन।



अक्रोधेन जयेत्क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत।
जयेत्कदर्यं दानेन, जयेत्सत्येन चानृतम् ॥

—महाभारत; उद्योगपर्व, ३८/७३-७४

[दूसरों के क्रोध को बिना क्रोध किये जीतो, असाधू (दुष्ट) को साधुता से जीतो, कंजूस को दान देकर जीतो और असत्य को सत्य से जीतो।

× × × ×

बुरा जो देखन मैं चल्या, बुरा न मिलिया कोइ।
जो दिल देख्या आपणां, मुझसे बुरा न कोइ॥

—कबीर

दर्द के दर पर

शामा सेठी (भूतपूर्व कोषाध्यक्ष, हिन्दी परिषद्)

हँसी दर्द के दर पर पहरा देती है
और मैं..................
मुस्कुराहटों के प्यालों में
ग़म का जाम पीता हूँ।
पीकर—
अपने जख्मों के खुले टाँके
खुद,
अपने हाथों से,
यादों की सुई में—
ख्यालों का धागा डालकर,
सीता हूँ।
जख्म इतने पुराने हैं—
इतने ख़स्ता हैं
कि, सुई की नोंक में नहीं आते।
सुई की नोंक
वक्त की मिट्टी
और,
आँसुओं के पानी से

जंग खाई हुई है;
मैं उसे फर्जों की खुरदुरी ज़मीन पर
घिसता हूँ—
कि,
किसी तरह यह ज़ंग छूट जाये।
नोंक चमक उठती है
और मैं सिर झुका कर देखता हूँ,
जख्म पहले से भी
जियादह खुल गये हैं—हरे हो गये हैं;
और उन्हें सीने के लिए
मेरे ख्यालों
और मेरे अहसासों का धागा
काफी नहीं है।
मेरे दिल में,
टीस उठती है
और मैं मुस्कुराहटों का प्याला,
(कर्ज़ लेकर)
एक ही घूंट में,
राहत भरे ज़हर की तरह
पीकर, चुप हो रहता हूँ।
मैं अपने ज़ख्मों के खुले टाँके
खुद अपने हाथ से सींता हूँ।

●

'कब तक'

सन्तोष झारू एम० ए० (अनुसंधित्सु)

'दीदी.......दीदी.......' चिल्लाता हुआ पिंकी आकर राका की गोद में गिर पड़ा।

क्या है पिंकी' राका ने उसे उठाते हुए कहा, 'तुम इस तरह चिल्ला क्यों रहे हो?'

'दीदी.......बाबा के साथ दो-तीन आदमी आए हैं, वे तुम्हें बुला रहे हैं।'

'क.......क्य.......य ....।.......राका एकाएक खड़ी हो गई।

'.......उसे देखने दो-तीन आदमी आए हैं, क्यों आए हैं, वह कभी नहीं जाएगी, वह एक बार बाबा से कह चुकी है कि वह.......'; '.......नहीं-नहीं, वह बाबा को यही तो नहीं बता पाई है कि वह राकेश को चाहती है। उसके हृदय में केवल एक राकेश नाम अंकित हो चुका है, वह.......वह.......,क्या करे वह? राका उत्तेजित हो उठी, 'क्या करे, वह क्यों नहीं बता पाती बाबा को.......पर.......पर.......राकेश कहाँ होगा इस समय वह यह भी तो नहीं जानती। आज से दो वर्ष पहले जब उसके बाबा का Transfer उस शहर में हुआ था तभी उसने राकेश को जाना था, पहचाना था और प्यार किया था।' राका अपने होंठ भींच उठी। 'प्यार.......हाँ, प्यार ही तो किया था। लेकिन उससे पहले वह इस शब्द को कितना ओछा, और तुच्छ मानती थी।'

'दीदी.......तुम नहीं जाओगी क्या?' पिंकी अधीर होकर बोल उठा।

'अ·······हाँ पिंकी, तुम जा कर भोला से चाय तैयार करने को कहो, मैं अभी आई।'

'अच्छा दीदी' और पिंकी उछलता कूदता रसोई घर की ओर भाग गया।

'कितना प्रसन्न है पिंकी, पिंकी ही क्यों, बाबा, माँ, रेखा सभी प्रसन्न हैं। राका का विवाह होगा, विवाह······' 'नहीं······नहीं वह विवाह नहीं करेगी, नहीं कर सकती। वह अपनी सहेलियों में कितने गर्व से कहा करती थी, 'देखो, मेरा एक नियम है, शादी से पहले कभी प्रेम नहीं करना! यदि प्रेम की परिणति विवाह में नहीं हुई तो एक ओर अपनी व्यथा और दूसरी ओर पति से भी धोखा।' उसकी सहेलियाँ उसकी इस बात पर हँस दिया करतीं वे सभी आधुनिक सभ्यता की पुजारिनें थीं, प्रेम को Part time व्यापार समझने वालीं! शायद इसीलिए उसे प्यार या प्रेम शब्द से घृणा सी हो गई थी।'

'·······और·······और फिर अचानक उसके बाबा का Transfer हो गया और वहाँ राकेश उसके जीवन में आया! राकेश······राकेश के सौम्य, शान्त, गम्भीर स्वभाव ने उसको अपनी ओर आकर्षित किया! यह आकर्षण इतना तीव्र था कि प्यार शब्द से घृणा करने वाली राका प्यार शब्द से प्यार कर बैठी।' '·······क्यों आता था राकेश प्रतिमा को पढ़ाने·······क्यों वह प्रतिमा के घर के समीप रहती थी·······क्यों·······' '·······ओह·······ओह मगर मुझे आज यह सब क्यों याद आ रहा है?' राका अपने पर झुंझला उठी, उसे तैयार होना था, बैठक में चाय लेकर जाना था जिससे कि वे लोग उसे देख सकें, उसके भाग्य का फैसला कर सकें। जैसे वह नीलाम पर चढ़ाई हुई, बेची जाने वाली, कोई वस्तु हो।

'·······पर·······पर·······उसके भाग्य का फैसला करने वाले वे कौन होते हैं! उसका जो जी चाहेगा, करेगी, उसे शादी नहीं करवानी·······नहीं ·······नहीं·······उसकी आँखों में आँसू आ गए, क्षोभ के, ग्लानि के या लज्जा के, क्या पता!'

अपने व्याकुल हृदय को थोड़ी शान्ति मिले, इस कारण उसने रेडियो चला दिया,

'इब्तिदा-ए-इश्क में हम सारी रात जागे,

अल्लाह जाने क्या होगा आगे'

ओ·······ह··········' राका अपना सिर पकड़ कर बैठ गई। उसे याद आया एक दिन जब वह और राकेश उस झरने के पास बैठे हुए थे। '······ पर राकेश तो लेटा हुआ था, राका मुस्कुरा उठी, उन दिनों की कितनी छोटी-छोटी बातें उसके सामने अभी तक इतनी स्पष्ट हैं मानो कल की बातें हों। सामने ही पहाड़ियों के पीछे से डूबता हुआ सूर्य दिखाई दे रहा था। अपने परिश्रम से थका होने के बावजूद भी मानो इन दो प्रेमियों को देखने के लालच में पहाड़ियों की ओट में से ताक-झाँक कर रहा हो। झरने की कल-कल ध्वनि एक मधुर संगीत सुना रही थी, उसी झरने में अपने पैर ड़ाले राका भी उस झरने की ध्वनि के साथ-साथ गुनगुना रही थी। राकेश पास ही लेटा हुआ था, उसके नेत्र बंद थे। तभी Transistor से यही गाना बजा था······

"इब्तिदा-ए-इश्क में·······

'राकेश, एक बात पूछूँ, बताओगे ?' राका मुस्कुरा पड़ी थी, 'हूँ', राकेश ने आँखें खोली नहीं थीं।

'राकेश, तुम रात को सो पाते हो क्या' और यह कहते-कहते उसकी मुस्कुराहट और खिल आई थी।

'क्यों' राकेश एकाएक उठ बैठा था और आश्चर्य से उसे देख रहा था !

'यह गाना सुन रहे हो' राका हल्के से हँस पड़ी थी 'ओह' और राकेश अट्टहास कर उठा था, उसकी मुक्त हँसी झरने की ध्वनि के साथ मिल कर एक अदभुत संगीत को उत्पन्न करने लगी।

'बताओ ना,' राका पूछ बैठी थी,

'राका' राकेश गम्भीर हो उठा था और दूर पहाड़ियों की ओर देखते हुए बोला, जैसे वह राका से ही नहीं, सारे संसार से कुछ कहना चाहता हो, 'राका, मैं रात को सो जाता हूँ और खूब गहरी नींद आती है मुझे ! तुम यह समझने का प्रयत्न करो कि प्रेम हृदय की ग्रन्थि, या उलझन नहीं है जिसमें उलझकर मनुष्य अपना आपा खो बैठे ! रातों की नींद और दिन का चैन उन लोगों को नहीं मिलता, जो किसी उलझन में हों, जिनके हृदय में ग्लानि, लज्जा या क्षोभ हो ! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, यह ग्लानि का या लज्जा का

विषय नहीं है। तुम जानती ही हो कि जब हृदय प्रसन्न एवं निश्चिन्त हो तब नींद आती है ! इसलिये मैं रात में खूब गहरी नींद में सोता हूँ और मुझे इस समय भी नींद आ रही है, और राकेश सचमुच ही उस नर्म-नर्म घास पर लेट कर सो गया था। और वह……वह……सोच में डूब गई थी। 'राकेश सच ही कह रहा है, वह स्वयं भी तो खूब सोती है' ……पर……अब…… अब, राका ने उँसास भरी, अब उसे रात में कभी-कभी ही नींद आती है ! वह कुछ ऊबी हुई सी गुसलखाने की ओर बढ़ गई ! नहा कर वह स्फूर्ति का अनुभव करेगी, इस बात को राका जानती थी।

'…………'वह और राकेश केवल दो वर्ष तक ही निकट रह सके थे। लेकिन इन दो वर्षों में वे एक-दूसरे के कितने समीप आ गये थे। यही बात जब उसने राकेश से कही थी, ……तब राकेश ने उसे जो उत्तर दिया, वह उसे अभी तक याद है। राकेश ने कहा था, 'राका, मन के बन्धन क्या इतने क्षीण होते हैं कि उन्हें दृढ़ बनाने के लिये एक अवधि की आवश्यकता हो ! नहीं राका, तुम गलत सोच रही हो। आपस के सम्बन्ध इतने क्षीण नही होते। वे जैसे प्रारम्भ में होते हैं वैसे ही बाद में भी रहते हैं, बल्कि जैसे रस्सी की गाँठ पानी पड़ने से और कड़ी होती जाती है उसी प्रकार प्रेम-रस से भीग कर ये मन के बन्धन दृढ़ से दृढ़तर होते जाते हैं।

……'ठीक ही तो कहा था राकेश ने, यदि मन के बन्धन इतने ही क्षीण होते तो वह अब तक राकेश को भूल चुकी होती। चार वर्ष की अवधि बहुत होती है पर प्रेम के बन्धन के दो वर्ष, शेष सभी समय पर (तीनों कालों पर) इस तरह छा गए हैं जैसे कि तेल की एक बूंद पानी की तह पर छा जाती है। छोटी सी बूँद जल के सारे स्तर को ढ़क लेती है।' इन्हीं विचारों में खोई राका कितनी देर स्नानघर में रही, इसका ध्यान उसे नहीं रहा। बाहिर से पिंकी दरवाजा खड़खड़ा रहा था।

'दीदी……ओ दीदी……जल्दी करो……बाबा बुला रहे हैं।'

राका ने जल्दी-जल्दी कपड़े पहिने और अपने कमरे की ओर भागी। ……वह……वह……बाबा से सब कुछ बताएगी, कुछ छिपाएगी नहीं…… …'पर……पर……यदि उसे बाबा से सब कुछ बताना ही होता तो वह इतने वर्ष क्यों उस पीड़ा को अन्दर ही अन्दर पालती रहती। अपनी इस उलझन के कारण ही तो वह राकेश को खो बैठी थी, स्वयं को खो बैठी थी,

नहीं स्वयं उसने राकेश को खो देने की इच्छा प्रकट की थी ।' उसे याद आया जब उसके बाबा के Transfer का पता चला तो वह सुन्न रह गई थी । एक क्षण के लिये उसे विचार आया था कि बाबा को सब कुछ बता देगी, पर···· ····पर·········वह ऐसा साहस नहीं कर पाई थी । इसके विपरीत राकेश से मिलने पर वह दूसरा ही साहस कर बैठी थी । 'राकेश' उसने राकेश के मुँह पर निगाहें टिकाते हुए कुछ कहना चाहा, पर उसके होंठ केवल फड़फड़ा कर रह गये थे ।

'क्या है राका, आज तुम कुछ उदास हो,'

'नहीं·········तो·········' उसने मस्कुराने का असफल प्रयत्न किया था, पर उसकी पीड़ा व्यक्त हो गई थी—निगाहों से ।' अपनी निगाहों पर राका का कभी वश नहीं रहता ! जैसा भाव उसके हृदय में हो, वही भाव उसकी आँखों से झाँक जाता है, चेहरे पर वह चाहे जैसा मुखौटा पहने ।

'नहीं राका·········कुछ तो है ।' राकेश ने व्याकुल हो कर कहा था ।

'राकेश, पिताजी का Transfer हो गया है' उसने निगाहें झुका ली थीं, क्योंकि जो कार्य वह करना चाहती थी, उसमें उसकी निगाहें सहायता नहीं देंगी, उल्टे उसमें बाधा डालेंगी, यह वह जानती थी ।

'क्या·········कह रही हो तुम' राकेश चौंक उठा था 'सच कह रही हूँ, और अब हम कुछ दिनों में यहाँ से जा रहे हैं', उसने मुस्कुराते हुए कहा था ।

'राका, तुम मुस्कुरा रही हो !'

'हाँ, और देखो मैं नहीं चाहती कि तुम मुझ से······मेरा मतलब··· ···मुझे याद करो ।'

'राका', राकेश चिल्ला उठा ।

'मुझे भूल जाना राकेश, इसी में तुम्हा······हमारी भलाई है ।'

'राका, मेरी ओर देखो, अपनी पीड़ा को मुझ से न छिपाओ, तुम··· ···तुम मुझे केवल एक बार अपने बाबा से मिलने का अवसर दो !' कहते-कहते राकेश का गला रूँध गया था ।

'हिश, रोते हो ! नहीं राकेश तुम बाबा से नहीं मिलोगे और मुझे भी भूल जाने का प्रयत्न करोगे, मुझे इस बात का आश्वासन दो', कहते-कहते राका ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया था ।

'राका' राकेश ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा और यही उनका आपस में पहला और अन्तिम स्पर्श था। इसके बाद सब कुछ समाप्त हो गया। वह बाबा के साथ दूसरे शहर चली आई और राकेश वहीं रह गया। स्टेशन की सीढ़ियों पर खड़ा। उसके वाद राका ने इस पीड़ा को अपने तक ही सीमित रखा! वह इस पीड़ा को अपनी निजी सम्पति मानती थी और जैसे कि कोई व्यक्ति अपनी निजी सम्पति पर किसी और की निगाह भी नहीं पड़ने देता, वह भी अपनी इस सम्पति को हृदय में ही छिपाए रही। कभी-कभी उसे आश्चर्य होता, कि न कोई वचन न कोई स्वार्थ, न स्पर्श और फिर भी एक बार इस बन्धन में बंध कर वह इससे छूट न सकी।

'......क्या राकेश भी उसे याद करता होगा! हो सकता है वह उसे भूल गया हो और विवाह कर के गृहस्थी में उलझ कर रह गया हो।...... फिर क्या हुआ, वह किसी प्रकार का प्रतिदान नहीं चाहती, वह तो केवल इतना जानती है कि वह राकेश को नहीं भुला पाई है।......'नहीं......नहीं ......मैं बावा से सब कुछ कहूँगी! मैं केवल राकेश को चाहती हूँ......मैं ......मैं.......' राका चिल्ला उठी और उसकी आँखों में आँसुओं की दो मोटी-मोटी बूँदें झिलमिला उठीं।

'......वह बाबा को सब कुछ वताएगी, कुछ नहीं छिपाएगी, अपनी पीड़ा, व्यथा......

आखिर कब तक वह अपने मन के घाव आँसुओं से धोयेगी.......?

अब वह विना बताए नहीं रह सकती उसे वताना ही होगा, ... यही सोचते-सोचते राका थके हुए कदमों से बैठक की ओर चल पड़ी।



फ़ितरत को नापसन्द है सख़्ती जुबान में।
पैदा न हुई इस लिए हड्डी जुबान में॥

—उर्दू कहावत

'उस्ताद की सीख'

मोहनलाल बाबू एम० ए० (अनुसंधित्सु)

"एक पैसा दे दो बाबा-किसी फटे पुराने कपड़े का दान करो बाबा" फटे पुराने कपड़ों में एक छोटा सा बच्चा, डिब्बे में बैठे सभी मुसाफिरों के आकर्षण का केन्द्र बन गया था, 'एक पैसा दे दो बाबू'। ज्योंही मेरी बग़ल के बाबू के सामने वह हाथ फैलाने लगा कि उस के मुँह पर एक जोरदार तमाचा पड़ा, अन्य मुसाफिरों के साथ मैं भी इस 'चटाक' की आवाज़ को सुन कर चौंक पड़ा, बच्चा तमाचे की ताब न ला कर माँ की गोद में छटपटा रहा था—कि एक जटाधारी बाबा बरस पडा—'क्यों बे ! ऐसे ही सिखायेगा लौंडे को ? तुम समझते हो कि सभी लोग भगवान के यहाँ से तकदीर लेकर आते हैं ?' जो खुद भूखों मर रहा है वह दूसरों को क्या देगा, हुँ।"

'क्यों महाराज। यह सब क्या हुआ जा रहा'—दूसरा जटाधारी जुओं से भरे जटा के घोंसलों को खुजलाते हुये बोला।

'हुआ क्या ! करम फूट गए इस छोकरे के' तिलकधारी की ओर संकेत करते स्वामी जी बोले—'बीवी तो महारानियों के ठाठ को ठोकर मारती है—बेटा ऐसा मिला कि वह नवाबों और महाराजाओं के कान काटता है।'

'यह सब क्या हो रहा है'— घबराहट में सुमन (जिस की यह पहली रेलयात्रा थी) पूछने लगा, 'मेरा तो दम घुटता जा रहा है—चलो यहीं पर उतर पड़ते हैं।'

'घबराओ मत दोस्त ! यात्रा पर जा रहे हो तो ऐसी कितनी ही चीज़ें तुम्हें देखनी होंगी,' मैंने सुमन को सांत्वना देनी चाही, धीरे-धीरे

सुमन को भी इस सारी घटना को देखने में कुछ मज़ा सा आने लगा था। इस का कारण यह था कि मैंने अपनी सुनी-सुनाई बात उस के कानों तक भी पहुँचा दी थी, व्याख्या सहित।

धीरे-धीरे स्वामी और उसके साथियों को देखते-देखते और उनकी बातें सुनते-सुनते हम यह जान गए कि स्वामी अपने इस छोटे-मोटे समाज का अगुआ था। उस के हर लहज़े की कदर उन सब को करनी पड़ती थी। वह अपने पद और पेशे के प्रति, ८० वर्ष की आयु होने पर भी जागरूक था। कन्याकुमारी से कश्मीर तक वह सारे देश को छान चुका था और अब, अब तो वह सारे मेलों; उत्सवों की डायरेक्टरी सा बन गया था। बड़े-बड़े सेठ, साहूकारों की गाँठ ढीली कराने में सिद्धहस्त था। उस के हथकंडों से बचकर कोई नहीं जाता था। उस के पास सदा—कभी काशी की यात्रा का खर्चा, कहीं विधवा की बेटी और अनाथ बच्चे को पालने का व्यय, कहीं हवन या गौशाले का चन्दा-रहता था।

टोली में से रामू की ओर उस का विशेष ध्यान था—वह उसे अपने उत्तराधिकारी की तरह पालता था।

डिब्बे में अभी तक सन्नाटा था और इस सन्नाटे में हम ने भी इन भिखारियों के साथ ही यात्रा करने का विचार किया।

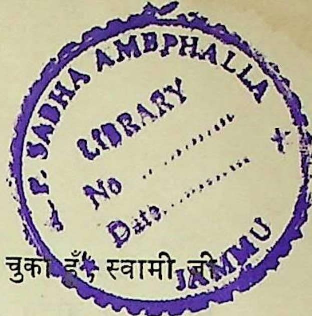
सन्नाटे को तोड़ते हुए रामू की पत्नी बोल उठी—'दादा ! सुना है मेले में काफी 'रश' है—वहाँ तिल धरने की भी जगह नहीं।'

"तुझे चिन्ता क्यों हैं री ! मैं कुछ न कुछ जतन तो करूँगा ही। —जय बम भोले की।"

'क्या करोगे उस्ताद ! पिछले कुम्भ में हजारों लोग मर गए थे। अब की पुलिस होशियार है।' तिलकधारी बोले।

'चल!—चल ! मुझे मत सुना ! छाती फुला कर स्वामी जी बोले, यहाँ कितने ही कुम्भ—कुम्भी देखे है—उज्जैन हरिद्वार, इलाहाबाद—कहाँ-कहाँ नहीं गया, बस बम भोले की जय बोलते चलो।

'ईश्वर की कृपा हुई तो इतने दूर से आने की मेहनत वसूल कर ही लेंगे।' अब रामू भी बडबडाया।



'अरे—मैं तो सारे हिन्दोस्तान का पानी पी चुका हूँ, स्वामी जी मुस्कुराये।

गाड़ी इतने में स्टेशन पर रुकी—गाड़ी का रुकना था कि स्वामी जी की टोली पर छापा पड़ा 'टिकट ! टिकट !'

'टिकट ! अरे हम तो साधू सन्त हैं बाबू ! जय बम भोले की' स्वामी जी छूटते ही बोले।

'यह सब यहाँ नहीं चलेगा—टिकट दिखाओ और खुशी से जाओ—टिकट न होने पर चार्ज देना होगा।'

'हम तो गरीब हैं बाबू ! तीर्थ-यात्रा पर जा रहें हैं। पैसा हमारे पास कहाँ—हम तो माँगते-खाते फिरते हैं।'

"जानता हूँ, मजिस्ट्रेट के सामने पहुँचोगे तो छः महीने तक बड़ी हवेली की यात्रा पर भेजेंगे।'

यह सुन कर स्वामी जी के बदन में आग लग गई उठकर चैकर के सामने खड़ा होकर बोलने लगा—'बाबू ! दया करो—हमें ले चलो ना ! हमारा सब कुछ तुम भले ही ले जाओ—लेकिन हमें एक लम्बी सजा ही कराना। वहीं हमारा रोटी कपड़ों का इन्तजाम.........'

'अरे उतर—नहीं तो मैं पुलिस को बुलाता हूँ, यह कह कर चैकर ने स्वामी जी की झोली प्लेटफार्म पर फेंक दी, फिर क्या था—देखते-देखते सारी टोली नीचे उतर पड़ी।

'साले कुत्ते हैं; अभी दो चार टुकड़ फेंक देता—तो कहीं भी ले जाता'—

× × × ×

दूसरे दिन प्रातः ज्यों ही हम स्नान करने के लिए घाट की ओर लपके कि पास ही चौक पर पुलिस के आदमी भीड़ को तितर-बितर करते दिखाई दिये। इतने में भीड़ को चीरता हुआ एक बूढ़ा आदमी काँपते हाथों से यात्रियों को रोकता हुआ पुकार उठा—'देखिए—यह जुल्म। ये तो केवल ग़रीबों को सताना जानते हैं। रक्षक क्या ये तो भक्षक बन गये हैं। हे भगवान ! हे राम ! एक तो दानों के मोहताज़—उस पर यह ज़ुल्म।'

उस स्वामी को हम चट पहचान गये जो सम्भवतः रात को ही पहुँचा था। उसके आर्तनाद को सुनाकर एक खद्दरदारी बोले—'छोड़ो भाई ! गरीब को परेशान नहीं करते—माँगने दो, तुम्हें क्या है'' ।

'कौन होते हो जी बीच में बोलने वाले तुम ! 'Get away नहीं तो ......हाँ ! दारोगा जी बोले, और स्वामी को चेतावनी देते आगे बढ़े—'देखो मैं फिर आऊँगा—यहाँ डेरा मत लगाना—नहीं तो मुझ से बुरा कोई नहीं होगा ।'

× × × ×

'चलो उस्ताद ! दिल छोटा करने से काम नहीं चलेगा'—त्रिपुंडधारी बाबा स्वामी को समझाने लगा । 'कहा था, पुलिस सख्ती करेगी ।'

'गीदड़ हो तुम सब—अरे यही तो मौका है—बताओ लोगों को—इस बूढे की दुर्गति, अपनी दुर्गति, आँखों में किसी रहस्य की बिजली चमका कर स्वामी जी गरजे' 'जय बम भोले की ।'

× × × ×

'लेकिन—खाली कुर्त्ता पहने तुम देर तक लेटोगे तो सर्दी लग जायगी,' रामू ने कहा—

'अरे कुनबे का तो भला होगा, अमावस्या भी खाली गई तो फिर क्या होगा ।'

फिर क्या था बात की बात में भिखमंगों ने स्वामी को घेर लिया और चीखने लगे........

'बाबू' अत्याचार-साधू पर अत्याचार, सब कुछ लूट लिया हमारा । अन्न जल के बिना दुःखी साधू पड़ा है । कुछ दया करो ।'

रात के गहन अंधेरे में, ऊनी कोटों और कम्बलों से सजी जनता के बीच फटे चीथड़ों में लिपटा आसमान की ओर घूरता हुआ स्वामी सभी के आकर्षण का केन्द्र बना था ।

'क्यों जी ! क्या हुआ है इस को ?—'

'हुआ क्या-इन कफ़न-खसोटों ने लूटा है, कमीने ! पुलिस के कुत्ते ! राम-राम !

'बाबू ! हम पर अत्याचार !—दया करो, मदद करो।' स्वामी के मूक अभिनय की व्याख्या करने में रामू एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहा था। इतने में दो मुट्ठी अनाज स्वामी के पल्ले से खिसक पड़ा 'हे भगवान्, ये लोग तो मरे को और मारते हैं,' 'बाबू—दाताओ हमारी मदद करो ! अन्न जल के बिना साधू मर रहा है।' रामू और उसके साथी रह-रह कर मानों गरम लोहे पर चोट दे रहे थे,

फिर क्या था देखते-देखते पैसों और फलों की वर्षा होने लगी, रामू जोर-जोर से चिल्लाये जा रहा था, ज्यों ही अनाज का ढेर स्वामी जी के बदन के बराबर ऊँचा उठ जाता था त्यों ही बाबा लोग उसकी सतह धरती से मिला देते थे।

'बाबू- जुल्म की हद है—बाबू जी मदद,'

भीड़ और ठंड एक साथ बढ़ती जा रहीं थीं। स्वामी का सारा बदन पानी से तर हो रहा था, 'रामू ! सर्दी बहुत है।' अर्थपूर्ण शब्दों में स्वामी ने रामू से पूछा और बोले—ज़रा दो घूंट कण्ठ में पड़ जाती तो बम भोले की कृपा से सब देख लेता, खैर।'

'यह तो है उस्ताद ! पर हम घाटे में भी नहीं हैं, कल खूब महुए की डकारना।'

स्वामी जी ने करवट बदली, बोले "हाँ ठीक है, पहले धन्धा फिर कुछ और" 'बस उस्ताद ! इसी तरह·······' बीच में रामू बोला। 'पर मुझे घबराहट-सी हो रही है रे ! मेरी छाती में दर्द और·······'

'बस-अब कुछ देर की ही तो बात है।'

स्वामी जी ने परेशानी के मूड में फिर करवट बदली, 'रामू !······· कम्बल·······' अटपटे शब्दों में स्वामी ने कहा

'उस्ताद ! यह क्या कर रहे हो—' कह कर रामू जोर से चीखने लगा—'बाबू रात से भूखा-नंगा साधू तड़प रहा है।'

स्वामी का चैन जाता रहा, उसे लगा कोई चीज उसके गले में अड़ गई है और सांस न अन्दर जाती है न बाहर निकलती है।

रामू चिल्लाये ही जा रहा था। अनायास ही स्वामी ने पूरा ज़ोर

लगा कर रामू के प्रति चीखने की कोशिश की, किन्तु उसे लगा जैसे शरीर को लकवा मार गया है, वह कोशिश करने पर भी कुछ न बोल सका,

रामू अनसुनी करके अपना दांव लगाये जा रहा था,

× × × ×

'अरे गज़ब हो गया—मैं तो जान ही नहीं पाया, पछतावे के से स्वर में घुटनों के बल बैठे रामू का साथी बोला—'अब क्या करेंगे रामू !'

'क्या मौत भी कोई अपने बस की चीज़ है ? करना क्या है, यह तो रोजी का वक्त है, उस्ताद ने भी तो यही सिखाया था कि 'पहले धन्धा उसके बाद फिर कुछ और'—

'लेकिन इस मिट्टी.......? 'उस्ताद के शव की ओर इशारा करके उसने कहा ! 'अरे तुम कोरे बुद्धू हो ! उस्ताद तो यही सीख दे गए हैं, अब उनकी मिट्टी पर माँगो ।'

पल भर में बाबा लोग फिर चारों ओर फैल गए.... 'बाबू साधू मर गया—इसके किरिया करम के लिए दान दो,'.......'धर्मी महात्मा मर गया—बाबू आने—दो—आने का दान करो—मिट्टी ठिकाने लगानी है । दिया लिया ही साथ जाता है सेठ ! धर्म की जड़ सदा हरी रहती है ।''

पैर अकड़ाये हुए पड़ी स्वामी की लाश और उसके नीले चेहरे को देखकर लोग खनाखन पैसे टपकाने लगे ।

'ज्यादा देर यहाँ रखना ठीक नहीं,' रामू ने बीड़ी का गहरा कश लगाते हुए साथियों से सलाह चाही । 'जगह बदलने से और मिलेगा-यही तो मौका है । उस्ताद की मिट्टी ४८ घण्टे तो काम देगी ही, बदबू आने लगेगी तो देखा जायेगा-गंगा मइया के हवाले कर देंगे कछुओं का ही पेट भरेगा, वाह रे ! मेरे उस्ताद: मरके भी चेलों का पेट भर गए ।'

ठीक है ना—पहले धन्धा फिर कुछ और ! ले पकड़ इधर वाला पैर, अबे साले—ठीक से तो उठा, देखता नहीं उस्ताद की नाक रेत में रगड़ी जा रही है, छिल गई तो सारा 'शो' मारा जायेगा,.......'हाँ ऐसे'

और उस्ताद के चेले उस्ताद को मरे जानवर की तरह लाद कर दूसरी , मौके की, जगह पर ले गये ।

'जय बम भोले की !'

दृष्टि-दान

(गीति-नाट्य के लिए लिखी गई भाव-कथा)

अमरनाथ एम० ए० (अनुसंधित्सु)

"पुरानी रूढ़ियों के इस दल-दल में फँसे भारतीयों का उद्धार कब होगा ?"

गंगा तट पर बैठा कैलाश इन्हीं विचारों में लीन था कि सहसा तारा वहाँ से गुज़री। तारा को देखते ही कैलाश चौंक गया। "आओ तारा बैठो— आज तो बैठो ना।" कैलाश ने अपनपा दिखलाते हुए कहा। किन्तु तारा कुछ कहे बिना आज भी चलती ही वनी और वह आज भी दिलपर हाथ रखकर इस चोट को सह गया।

तारा को यद्यपि पुरुष-जाति पर कुछ कम ही विश्वास था, फिर भी वह उसे चाहती थी; किन्तु दिल पर पत्थर रखकर कैलाश से बोलती नहीं थी और चुपचाप गंगा तट पर आती जाती थी। इस का विशेष कारण यही था कि वह कैलाश से उच्च-कुल की थी। उसे इस वात का सदा भय रहता था कि कहीं पिता जी के कानों तक उसकी यह प्रेम-गाथा न पहुँच जाय।

तारा रोज़ शाम को एक दीपक लेकर गंगा तट पर स्थित शिवजी के मन्दिर में रखने आती थी। झीने अंधकार में जब कभी वह दीपक लेकर निकलती तो उसका सौंदर्य देखते ही वनता।

आज अँधेरा अधिक हो गया था, तारा अपने आँचल में दीपक को छिपाए हुए निर्जन पथ पर जा रही थी ; विलम्ब होने की चिन्ता से उसके पग जल्दी-जल्दी उठ रहे थे। एकाएक किसी ने पीछे से पुकारा—'तारा !'

तारा कैलाश की आवाज़ पहचान गई, फिर भी सीधे ही चलती

रही। वह और भी तेज़ी से चलने लगी परन्तु आज उसके पैरों में कंपन हो रहा था। टेढ़ी नजर से पीछे की ओर देखा तो एक छाया अपना पीछा करती नज़र आई। मन्दिर पहुँचकर तारा ने दीपक द्वार में रख दिया और भगवान शिव की भव्य मूर्ति के सामने खड़ी हो गई। छाया ने भी ऐसा ही किया। क्षण भर बाद तारा ने पूछा—"तुम कौन हो ?"

"भगवान शिव का एक उपासक, और तुम्हारा प्रेमी।" कैलाश ने आवाज़ थामते हुए कहा।

"प्रेमी, तुम मेरे लिए क्या कर सकते हो ?"

"जो तुम कहोगी, करूँगा।"

"बड़े साहसी हो।"

"तारा ! तुम नहीं जानती, मैंने तुम्हारे लिए कितने प्रभात खो दिए, कितनी सांझ गंवा डालीं। जिस दिन तुम नहीं दिखती हो उस दिन मेरी आँखें थककर पथरा जाती हैं और उन्हें कुछ नहीं दिखाई देता। तुम स्वयं सोचो। क्या तुमने कभी ऐसा अनुभव किया है ?" एक ही सांस में कैलास सब कुछ कह गया। तारा ने कोई उत्तर न दिया। उसने अपनी दृष्टि मूर्ति पर केन्द्रित कर दी थी ; हाथ से साड़ी के छोर को मरोड़ रही थी। उसका मन कल्पनाओं के आकाश में उड़ान भर रहा था। साथ ही मुख पर चिन्ता की रेखाएँ भी अंकित होने लगी थीं। वहाँ होली और दिवाली साथ साथ थी।

कैलाश ने फिर उसके कोमल हृदय को टटोला। "तारा ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन भार वन गया है। इस मरु को सरस बना दो। क्या मेरे प्राणों का कोई मूल्य नहीं ? तुम्हारे धर्म में प्रेम का कोई स्थान नहीं ? यदि ऐसा ही है तो अब तुम्हें मेरी आकृति न दिखाई देगी। मैं सदैव के लिए चला जाऊँगा किन्तु उत्तर तो दो"।

तारा अब तक संयत हो गई थी। तो भी एक क्षण के लिए उसे एक धक्का सा लगा, जिसने उसके विचारों को झकझोर डाला। वह सोचने लगी—"क्या कैलाश का जीवन उससे बँधा है ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता। ये युवक रूप के लालची होते हैं। इनमें प्रेम की ऊपरी भभक होती है। कितने ही युवकों ने उससे प्रेम की भिक्षा माँगी थी, पर उसने कठोर होकर

ठुकरा दिया था। आज उसका मन क्यों व्याकुल ? पिताजी के स्वभाव को भली प्रकार जानते हुए भी कैलाश क्यों अपनी जवानी के पीछे पड़ा है। मैं क्या करूँ ? हे भगवान् तुमही वताओ, मैं दुविधा में हूँ। हे विधाता ! मुझे सुन्दर वनाकर तुझे क्या मिला ? क्या मेरी जवानी का फल यही है कि मुझे अपनी इच्छानुसार कुछ भी करने का अवसर न मिले ?" सोचते ही सोचते तारा के नेत्रों से वेदना के आँसू टपकने लगे। कैलाश निराश सा होकर बोला —"उत्तर दो तारा ! मैं मंझधार में हूँ—उस पार या इस पार कर दो ना।"

तारा ने अपने अन्दर कुछ दृढ़ता का अनुभव किया और कहा—"तुम मुझ से प्रेम करते हो ?" कैलाश मानो मनचाही वस्तु पाकर एकदम बोला —"तुम्हें अव भी विश्वास नहीं क्या ? काश, तुम्हें मैं अपना हृदय फाड़ दिखा सकता।"

"मेरी किस वस्तु से प्रेम करते हो।" प्रश्न वड़ा जटिल था। कैलाश ने तारा को नख से शिर तक देखा। वहुत देर तक सोचता रहा। कोमल अरुण चरण सब से सुन्दर थे। आँखें ऊपर को चलीं—नहीं नाक, कान, मुख या केश। कौन सब से सुन्दर है ? किससे प्रेम करता हूँ ? इस झगड़े में न पड़कर बोला—तुम से प्रेम करता हूँ तारा ! मैं नहीं जानता कि मुझे किस वस्तु से अधिक प्रेम है। मुझे तो तुम्हारे अंग-प्रत्यंग सुन्दर लगते हैं। तुम सुन्दर लगती हो, आह तुम कितनी सुन्दर हो।" तारा अपने सौन्दर्य की प्रशंसा से प्रसन्न हुई या नहीं, परन्तु मुस्करा कर बोली—अच्छा मैं ही पूछती हूँ। मेरे मृणाल से कोमल हाथ तुम्हें सबसे सुन्दर लगते हैं ना ? कैलाश तारा के गोल-गोल हाथों से सभी अंगों की तुलना करने लगा, बोला— "इससे दूसरे अंगों का अपमान होगा।"

"सिहनी जैसी कमर ? नहीं ? मयूर सी ग्रीवा ? नहीं ? नवकिसलय से अरुण कपोल ?" कैलास की आँखें तारा के सौंदर्य-सागर में गोते लगा रहीं थीं, वह जोर से वोला—"यह सब क्यों पूछ रही हो तारा ? मैं कह चुका हूँ कि तुम संसार में सबसे सुन्दर हो।"

"भयभीत मत हो, ! मेरे इस सुदीर्घ केश-पाश को देखो।" तारा ने अपने कोमल केशों को लहराते पूछा—"कितने सुन्दर हैं ?" कैलाश ने उत्तर न दिया। "अव रही हिरणी सी आँखें।" तारा ने अपनी पैनी आँखों को

उसकी ओर घुमाया। कैलाश बिना सोचे समझे बोल उठा—"हाँ तारा! तुम्हारी आँखें कितनी आकर्षक और मोहक हैं।"

तारा बोली—"आँखें क्या हैं? दो गोल गड्ढे, हैं जिनमें दो गोल-गोल पत्थर रखे हैं। ये ही सब सुन्दर हैं? इन्हींसे तुम प्यार करते हो?" "ऐसा न कहो तारा! मैं इतना जानता हूँ, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, प्रेम की भिक्षा माँगता हूँ।"

कैलाश तारा के उत्तर के लिए आतुर था, परन्तु तारा ने केवल इतना कहा, "कल आओगे ना? इसी समय, यहीं। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।" कैलास ने उत्तर में केवल सिर हिला दिया। तारा ने उसे नहीं देखा। वह उसी पथ से अपने घर चली गई।

× × × × ×

दूसरी संध्या को कैलाश जब मन्दिर में पहुँचा तो उसने तारा को भगवान् की मूर्ति के सामने अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ा हुआ पाया। केश-पाश खुला था, मुख नीचे को था, हाथों की मुट्ठियाँ बँधी सी थीं। उसकी पदचाप सुनकर पड़े ही पड़े बोली—"तुम आगए कैलाश।" कैलाश ने कहा—"हाँ तारा! उठो ना।" तारा ने घुटनों के बल उठकर हथेली पसार कर कहा—"यह लो तुम्हारी वस्तु जिससे तुम प्रेम करते हो, और जो मेरी सुन्दरता का वास्तविक मूल्य है।" उसकी पीली हथेली पर आँखों के गोलक थे, जो रक्त से लथपथ होकर चमक रहे थे। हाथों में स्थिरता थी, कंप नहीं।

कैलाश ने ताज़े गोलकों की ओर देखा, फिर तारा के मुख की ओर। आँखों के स्थान पर दो गोल-गोल रक्त-भरे गड्ढे रह गए थे। उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। वह तारा के चरणों पर गिर पड़ा। लड़खड़ाते शब्दों में बोला, "तारा·······तुम·· ···देवी···हो। तुमने मुझे आँखें दीं। मैं अन्धेरे में था। अन्धा था। सब कुछ दे दिया तुमने।" तारा ने शान्त किन्तु अटपटे शब्दों में उत्तर दिया—"मैंने तुम्हारे लिए कुछ नहीं किया। मेरे ये अंग-प्रत्यंग, मेरी यह सुन्दरता सबको धोखा देती थी। इन्हीं को दण्ड दिया।" कैलाश विह्वल हो उठा। मन्दिर के बाहर चिल्लाता हुआ दौड़ा—"मुझे आँखें मिलीं, मुझे आँखें मिल गईं! मुझे कुछ नहीं चाहिए।" और, चलता ही चला गया—**न जाने कहाँ?**



ताज़ा ख़बर

श्री भूषणलाल कौल एम० ए०

"आ गया आ गया.......आ हा हा ! अरे आगया। किस शान से आ रहा है पूरे तीन दिन के वाद, कितनी राह देखनी पड़ी और सच मानो तो तीन दिन में ही बुरी हालत हो गई, तेल और चावल खतम, लकड़ी विलकुल ही नहीं। ....पर अब तो आ ही गया, चलो बेटा आज कसर पूरी हो जाएगी।" यही कहते-कहते मैंने 'रेडलम्प' का टोंटा सुलगाया, एक दो कश लगाए और एजेण्ट की दुकान से साईकल निकाल ली.......अरे, हवा ही नहीं ....अब गुल्ला से १५ नए पैसे माँग कर मैंने साइकल ठीक करवाई और Tourist Centre की ओर चल पड़ा। बचो ! बचो ! बचो ! 'माफ करना' देखता नहीं, अन्धा कहीं का। एक कालिजी लड़की से टक्कर होते-होते बची, चलो जान बची, मैं सावधानी से साईकल चलाने लगा। ओ सुल्ला ! क्या कर रहे हो, जल्दी चलो। आ गया है, फिर देर हो जाएगी, अपने पैरों से ही मैं प्राय: Brake का काम लेता हूँ सो तनिक शीघ्र गति से पैडल चलाने लगा। १२ वजने में केवल १० मिनट रह गये, सोचा सीमा को स्कूल में देख आऊँ परन्तु नहीं आज जेब में कुछ नहीं है, ६ पैसे भी नहीं। मैं Tourist Centre पहुँच गया, जहाज आ गया था और गाड़ी भी Airport से आज का अखवार लेकर पहुँच गयी थी।

नमस्कार साहव ! "नमस्कार, चलो भाई अपने वण्डल देखलो....... ४ बण्डल Indian Express, एक वण्डल Statesman एक बण्डल Tribune और ४ बण्डल Times of India." इतने में गुल्ला और सुल्ला दोनों आ गए। अखबारों को साइकलों पर लाद कर हम Agent

की दुकान पर पहुँचे और अपने हिस्से के अखबार लेकर मैं चल पड़ा। आ गया.......आज का ताज़ा पर्चा ....Express........Times of India, Statesman.......Tribune आगया.......Times of India. कमाँडर नानावटी को उमर कैद, अदालत का फैसला। पढ़िए सरकार, आज का पर्चा ....श्रीनगर में एक Lady Lecturer मर्द बनने के लिए बेचैन है.......... ताज़ा खबर.......आ गया मोहन अखबार वाला आ गया.......। Times of India........साहब पन्द्रह पैसे, ये लीजिए दस पैसे वापिस। Tribune? यह लीजिए। हाँ साहब.......यह आप का पर्चा।

मैंने Coffee house में Paper दे दिया और आगे की ओर चल पड़ा.......लीजिए सरकार आपका दिल पसन्द पर्चा Tribune आ गया.... ...पंजाब में नयी सरकार.........Editor की Report पढ़िए। Indian Express........आ गया आज का ताजा पर्चा.......। हाँफता चिल्लाता, अखबार बेचता मैं लालचौक में पहुँच गया, यहाँ अखबार बेचने वालों में होड़ सी लग जाती है। इतनी देर में गुल्ला भी आ गया। क्यों भाई कितनी देर है.......बस समझो आ ही गया। हाँ भाई आपको क्या दूँ.......ये लीजिए ....१५ नए पैसे; पढ़िए.......सरकार अखबार Express पढ़िए.......नानावटी को उमर कैद.......औरत मर्द बन रही है। हाँ साहब; क्या है....... Statesman.......यह लीजिए और यह ५ पैसे वापिस। Express यह है साहब। पाँच रुपए का note........change नहीं है साहब। मैंने देखा Tribune हाथों हाथ बिक रहा है अब केवल दस पर्चे बचे थे सो उन को दबालिया.......

Tribune साहब.......खतम हो गया साहब। एक छोकरा हाँफता हुआ Tribune के लिए आगया। Tribune नहीं है। अरे भाई सुनो....... ओ लड़के सुनो.......३० पैसे में मिलेगा। निकालो १०...२०, २५....और तीस। गुल्ला एक कापी दो। गुल्ला और मैं दोनों बिज़नेस साथ-साथ करते थे दोनों सहपाठी थे, घनिष्ठ मित्र थे, दोनों दसवीं की परीक्षा में एक साथ बैठे थे.......पर दोनों Third class में उत्तीर्ण हुए.......और अब दोनों भाग्य एवं परिस्थिति के फेर में पडकर अखबार बेचते थे।

लालचौक से हम हब्वाकदल की ओर चल पड़े। रास्ते में कई जगह अखबार दिया। क्यों भाई क्या चाहिए.......Tribune........नहीं है। जनाब

आज वहुत कम कापियाँ आई हैं गुल्ला ने बीच में ही मेरे कथन का अनुमोदन किया । सुनये········५० पैसे में मिलेगा·······क्या दस रुपए·······हाँ हाँ मैं change दूँगा·······यह लीजिए पाँच रुपए·······और यह रेज़गारी ।

दिन भर अखबार बेचने के पश्चात् मैं शाम को घर पहुँच गया । अरी ओ सीमा ! मैं आ गया·······"भैया ! आगए ?" हाँ हाँ·······ये देखो चावल दो किलो, दाल आधा पाव, मुन्डी एक किलो, चाय तथा खाँड भी लाया हूँ । और हाँ यह है तेरी 'रफ कापी'·······ओ ! तुम नाराज़ हो······· पर यह तुम्हारी आँखें लाल क्यों हैं ? तुम रो रहीं थीं ?·······सीमा······· क्या बात है "·······कुछ नहीं भैया, कुछ नहीं मैं चाय वनाती हूँ" । योंही वात को टाल कर सीमा रसोई में चली गयी और मैं वहीं खिड़की के पास बैठा चावल साफ करने लगा ।

जव से पिता जी की मृत्यु हुई·······सीमा वड़ी उदास रहती है······· पर उसे उदास नहीं रहना चाहिये, मैं तो अभी जीवित हूँ । मेरी छोटी बहन इस वर्ष मैट्रिक पास करेगी·······फिर कालिज जाएगी·······मोहन अखबार वाले की वहन बी० ए० पास करेगी·······मैं उसका विवाह करूँगा बड़ी धूम धाम से । धूमधाम से ! पर कैसे ? धूमधाम के लिए·······हाँ यह सत्य है । पर ७००) रुपये तो बैंक में हैं और दो तीन हज़ार मैं जुटा लूँगा । पिताजी की मृत्यु के पश्चात् उनके जी० पी० फण्ड के पैसे मैंने सीमा के नाम पर बैंक में जमा करवाये थे । अच्छा सा वर मिले तो क्या कहना ? पर उसे मैट्रिक तो पास कराना चाहिये । ·······"भैया चाय ।" हाँ ! लाओ बेटी चाय भी पीलें । अभी चाय ही पी रहा था कि वाहर से गुल्ला की आवाज आई·······"अजी आ रहा हूँ ।" आओ भैया तुम भी चाय पीलो·······"अरे नहीं, 'मार्तण्ड' और 'ज्योति' की कापियाँ लाया हूँ, मन्दिर में एक जलसा हो रहा है वहीं सब कापियाँ विक जाएगीं, जल्दी करो ।" आ रहा हूँ ! सुनो सीमा ! तुम खाना बना के रखना, मैं आठ वजे तक लौट आऊँगा । और देखो अन्दर से कुण्डी लगादो, भूख लगी हो, तो खाना खालेना । "भैया ! शाम को भी अखबार बेचने की क्या आवश्यकता है ? अपने स्वास्थ्य का भी कुछ ख्याल रखो······· इतने परिश्रम से तो कहीं·······!" अरी पगली कुछ नहीं होगा । 'अरे मोहन !' वाहर से गुल्ला पुनः चिल्लाने लगा·······। अच्छा तो बेटी ! मैं चला "शीघ्र लौट आना, मैं तब तक खाना नहीं खाऊँगी ।" सीमा कहती गई ।

यों ही अखबार बेचते-बेचते मेरे यौवन का यह अमूल्य वर्ष व्यतीत हुआ और इधर सीमा मैट्रिक परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई । कालिज में सीट मिल ही गयी और मुझे अब केवल यही चिन्ता थी कि कब वह दिन आएगा जब सीमा दुल्हन के रूप में घर से विदा होगी । अपनी अनेक इच्छाओं का खून करना पड़ता था, जवानी का नशा चढ़ा हुआ था, परन्तु स्वप्न, स्वप्न ही रह जाते । **बहन की माँग में सिन्दूर देखने के लिए मेरी अनेकों अभिलाषाएँ यों ही निष्फल हो जाती थीं** ; और मैं जीवन-वन में दूर किनारे पर खिले हुए एक सुगन्धि-हीन पुष्प के समान था जिसकी ओर किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं होता था ।

एक दिन मैं कोठी-बाग पुलिस स्टेशन से होता हुआ Tourist Centre पहुँचा । क्यों भाई गुल्ला ! क्या हाल है । "अरे मोहन ! कमाल है, वल्लाह, ईद के चाँद हो गए हो ।" अरे यार ! बैठ, यह टोंटा एक ही है, ले सुलगा; सुल्ला कहाँ है ? "आ रहा होगा ।" गुल्ला, मैं बाबू से जहाज़ के विषय में पूछता हूँ । क्यों साहब ! जहाज़ ने लैण्ड किया ? "अभी नहीं", नाक भौं सिकोड़ते हुए I. A. C. दफ्तर के बाबू ने अपनी पारम्परिक शान से काली टाई का नॉट हाथ से ठीक करते हुए उत्तर दिया । दस मिनट के पश्चात् पता चला कि बानिहाल पर बादल छाए हुए हैं, अतः जहाज़ वहीं से लौट गया । काम कुछ नहीं था, सो गुल्ला को साथ लेकर मैं पुरोहित 'जग बोयुई' के घर की ओर चल पड़ा । कुछ दिन पूर्व उनसे सीमा के विवाह की बात छेड़ी थी, सोचा उनसे पूछ लें, कहीं कोई वर तो नहीं मिला.......

बान मुहल्ला पहुँच कर देखा कि जग बोयुई मस्त चला आ रहा है । सर पर गोल सफेद पगड़ी, लिलन का फिरन, पैरों में घास की जूती और बगल में एक थेला (जिस में भिक्षा का अन्न और नमक था) दबाए चला आ रहा है । हाथ जोड़ कर मैंने नमस्कार किया और पुरोहित महाराज ने सिर हिलाकर आशीर्वाद दिया । "मैं तो वहीं आ रहा था" । अवश्य चलिये महाराज 'तो चलो ।' घर पहुँच कर मैंने उन्हें अपने कमरे में बिठाया । सीमा हुक्का, काँगड़ी और तम्बाकू की डिबिया लेकर आई और पण्डितजी घूर-घूर कर उसे देखने लगे । पण्डित जी हुक्का पीने लगे, और सुअवसर जानकर मैंने बड़ी नम्रता से पूछा, पण्डित जी ! क्या हुआ वर का ?

'अरे हो ही जाएगा, कुछ न कुछ तो हो जाएगाही......परन्तु'.......

परन्तु क्या ? पण्डित जी.......क्या है......'कुछ नहीं मोहनलाल यों ही'.....
.....यों ही क्या पण्डित जी ?........'कुछ नहीं बेटा......ऐसे ही'........ओ हो ! ऐसे ही क्या........जगन्नाथ जी ! कुछ तो बताइये। 'क्या बताऊँ मोहनलाल ! उस दिन तुमने मुझसे सीमा के विवाह के विषय में कहा, मैंने चार पाँच जगह बात छेड़ दी। उसी दिन अपने यजमान के यहाँ नवाकदल में बात छेड़ दी। लड़का पुलिस में हवलदार है, दस जमात पढ़ा है पर मालकिन से पूछा तो........बड़ा क्लेष पहुँचा मन को उसकी बातें सुनकर........।' 'क्या कहा पण्डित जी ! उस मालकिन ने ?' गुल्ला ने बीच में ही बात काट कर पूछा ....। 'यही भाई कि........अरे पण्डित जी क्या बात करते हैं आप, उस अखबार वाले की बहन। ना बाबा ना ! जात हम से नीची है, न बाप न माँ, केवल एक भाई है और वह भी...........'ताज़ा पर्चा ताज़ा पर्चा' दिन भर चीखता रहता है........ऐसे घर से बहू मैं नहीं लाऊँगी'.......सीमा चौके में पण्डित जी के लिए चाय बना रही थी। समावार से सीं सीं सीं की आवाज़ आ रही थी जो मेरी आत्मा को भेद कर मेरे हृदय के तारों को हिला देती थी।

और फिर आपने क्या कहा ? मैंने पण्डित जी से चकित होकर पूछा। 'अरे कहता क्या, मैंने तब कुछ नहीं कहा और तीसरे दिन हब्वाकदल में गोपीनाथ के घर में बात छेड़ दी'........कौन गोपीनाथ? 'अरे वही गोपीनाथ बज़ाज़, जो अदालत में चपरासी है।' हाँ। पर पण्डित जी उसका कोई लड़का नहीं है।'........मोहन ! उसका एक छोटा भाई है जो दफ्तर में क्लर्क है।' पर पण्डित जी उसकी आयु ३०-३५ वर्ष के लगभग है। 'अरे तो क्या हुआ...।' नही पण्डित जी सीमा तो केवल १६ वर्ष की है। 'पर सुनो तो भाई, बात छेड़ दी मैंने और गोपीनाथ बोले......सगाई में क्या देंगे, तीन चार हज़ार तो खर्च करने ही पड़ेंगे। घड़ी, अँगूठी, पेन, सूट, ट्रांजिस्टर, ये चीज़ें तो होंगी ही पर मेरे छोटे भाई को साइकिल की भी बड़ी आवश्यकता है।'

मैं चकराने लगा और गुल्ला पण्डित जी की ओर विचित्र मुद्रा में देखने लगा, चौकें में समावार की आवाज़ तेज़ होने लगी और सीमा नतमस्तक बैठी, विचारों में खोयी हुई यह बातें सुन रही थी।

और कोई घर देखा आपने ? मैंने पण्डित जी से भर्राई आवाज़ में पूछा........। 'हाँ एक और घर में बात छेड़ी, तुम्हारा पता बता दिया तो

त्यौरियाँ चढ़ा कर घर के मालिक मुझ पर बरस पड़े.......................'नहीं जगन्नाथजी नहीं—वहाँ सम्बन्ध नहीं हो सकता। उस लड़की के लिए पहले भी किसी ने कहा था पर वह मेरे राजा को पसन्द नहीं।.......................
.......................वही पुरानी फैशिन की लड़की, मेरे छोटे राजा को थोड़े ही पसन्द होगी। न टाइट कपड़े पहनती है, न अँग्रेजी बोलना जानती है, ना बाबा ना। और हाँ है तो वह एक अखबार-फरोश की बहन। ऐसे व्यक्ति के साथ हमारा सम्बन्ध हो ही नहीं सकता, गुण्डों और लफंगों में उठता बैठता है, दस-दस पैसों के लिए चक्कर लगाता है।'

'बस करो पण्डित जी बस!' गुल्ला के हृदय में क्रोध की अग्नि भड़क उठी और उसकी लाल-लाल आँखे देख कर पण्डित जी कुछ सहम गये। वह क्रोध में पागल होकर कहने लगा—'हम अखबार फरोश हैं। यह सत्य है पर इज़्ज़त फरोश नहीं।' मैंने उस का क्रोध शान्त करने का प्रयत्न किया, इसमें पण्डित जी का क्या दोष। समावार में पानी उबल रहा था। सीमा चाय लेकर आई। मैंने देखा कि उसके नेत्र रूपी दो समावारों से भी उबलता हुआ पानी वह रहा था।

हाँ पण्डित जी और किसी घर में आपने बात छेड़ी? 'हाँ मोहन लाल! अभी-अभी एक और घर में बात छेड़ी थी।' कहाँ पण्डित जी?.... अरे वही सत्थू में, प्रेमनाथ तिक्कू के यहाँ।' वे जो....पण्डितजी! एक ठेकेदार के यहाँ मुनीम हैं। 'हाँ हाँ वही'....पर उनका लड़का.. पण्डित जी....वह जो कालेज में पढ़ता है। 'हाँ'। पर वह तो'....हाँ हाँ तनिक ऊँचा सुनता है,' हाँ पण्डित जी उसकी आँखें ठीक नहीं, कम दिखता है, हर समय मोटे शीशे का चश्मा लगाता है....'पर सुनो तो....'हाँ पण्डित जी....' मैंने विवाह के विषय में बात छेड़ी....काफी बातें हुईं और अन्त में उन्होंने दो शर्तें रखीं'....'कौन-कौन सी? गुल्ला ने उत्सुकता से पूछा....'पहली शर्त यह कि मोहन अखबार बेचना छोड़दे.... हाँ हाँ?....जी हाँ, और दूसरी शर्त यह कि लड़के को कालेज में पढ़ाने का भार वह ऊपर ले। हँ हँ हँहँ हँ हँ हँ'....अरे सीमा! मैं उठकर चौके में चला गया, क्या हुआ, रो रही हो....पगली! ऐसी बातें तो विवाह के समय होती ही रहती हैं। सीमा बहुत रो रही थी, पास ही चूल्हे पर बर्तन में चावल उबल रहे थे। ऊपर से ढक्कन था और भाप अपनी पूरी शक्ति से ढक्कन को ऊपर फेंकने

का प्रयत्न कर रही था। वर्तन से धक् धक् धक् धक् की आवाज़ आ रही थी और सीमा का हृदय भी धक धक धक चल रहा था।

पण्डित महाशय चलने को तैयार हुए, मैंने उनसे पुनः वर खोजने का नम्र-निवेदन किया। पाँच रुपए का नोट उनकी हथेली पर रखा और वे विदा हो गए। गुल्ला जड़वत वहीं बैठा विचार-मग्न था और मैं सीमा के अन्धकारमय भविष्य में प्रकाश ढूँढने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था।

चार मास और व्यतीत हुए। मैंने इन दिनों सीमा में एक विचित्र परिवर्तन पाया। वह प्राय: उदास रहती थी···कभी कालेज जाती ही नहीं और कभी देर से लौट आती थी। कभी बहुत ही प्रसन्न और कभी अत्यधिक चिन्ताग्रस्त। पण्डित से कई बार मिला परन्तु कहीं कोई सुयोग्य या अयोग्य वर नहीं मिला। एक दिन मैं रोज़ के काम से जा रहा था कि सीमा ने पुकारा·····"भैया! मैं शाम को देर से लौटूँगी एक सखी के पास जाना है—उसके भैया का जन्म दिन है मुझे निमन्त्रण दिया है।' अरी पगली कुछ Present का प्रवन्ध भी करना पड़ेगा, मैंने यों ही साईकल साफ करते हुए पूछा।

'नहीं भैया·······इसकी कोई आवश्यकता नहीं।·········'

शाम को घर लौट आया पर सीमा घर पर नहीं थी·······मैंने खाना पकाना शुरू किया·········पगली कहीं की, न जाने कहाँ रह गयी ·······बड़ी भूख लगी होगी········मुझे खाना बनाते देख कर शरमा जायगी········और अवश्य यह कहेगी—भैया! तुमने खाना क्यों बनाया, मैं क्या मर गयी थी—अब मैं तुम से नहीं बोलूँगी········और तब मुझे मनाना पड़ेगा·······

यही सोचते-सोचते नौ बज गए परन्तु सीमा नहीं आयी, मैंने गुल्ला के पास जाकर उससे कहा·······हम दोनों कालेज गए·······चौकीदार से पूछा क्योंकि वह भली-भाँति सीमा को जानता था····पूछने पर पता चला कि सीमा आज कालेज नहीं आई थी···पगली ? यों ही क्लास Miss कर देती है····पता नहीं Ist Division कैसे आयगा···Ist Division नहीं आया तो आगे क्या होगा···मैंने सोचा····सम्भवत: घर पहुँच गयी होगी····दोनों घर पहुँचे परन्तु निराशा हुई···

'रात का समय था····सखी ने रात ठहरने के लिए हठ किया होगा।' गुल्ला मझे आश्वासन देता रहा। और हम दोनों रात गए तक आपस में बातें

करते रहे····प्रातः मैंने सोचा शायद सात-आठ बजे तक सीमा घर लौट आएगी, क्योंकि पुस्तकें लेने के लिए या कपड़े बदलने के लिए घर तो आना ही पड़ेगा···यही सोचकर मैं कमरे में बैठा था प्रतीक्षारत, विचारमग्न, अन्यमनस्क, और गुल्ला अभी भी सोया हुआ था। 'मार्तण्ड' का एक हॉकर प्रतिदिन सवेरे इसी गली से होकर जाता था·······दूर से मेरे कानों में उसकी आवाज़ गूँजने लगी 'आज का ताज़ा पर्चा···ताज़ा पर्चा····पढ़िए सरकार··· आज का ताज़ा पर्चा····अखवार 'मार्तण्ड' पढ़िए····एक सनसनी ख़ेज खबर पढ़िए'····मेरा हृदय धक् धक् करने लगा, शरीर काँपने लगा—आँखों के सामने अन्धेरा छा गया····गुल्ला ने लिहाफ में से अपना सिर बाहर निकाल लिया···आवाज़ साफ आ रही थी। हॉकर मकान के पास से गुज़र रहा था···· 'ताज़ा पर्चा····१० पैसे, १० पैसे—केवल दस पैसे में पढ़िए सरकार····सनसनी खेज़ खबर पढ़िए, अदालत ने शादी मंजूर करली'····आवाज़ साफ आ रही थी। 'अदालत ने शादी मंजूर करली। लड़की ने अपनी मर्ज़ी से शादी कर ली। अदालत ने शादी की इज़ाजत दी····पढ़िए सरकार सीमा की शादी यूसुफ से हुई···पढ़िए! अखबार पढ़िए···फी पर्चा १० पैसे····१० पैसे···· १० पैसे।····'

अनायास मेरे मुँह से निकला—'गुल्ला'! उसी समय गुल्ला ने मुझे आवाज़ दी 'मोहन'!

●

सियह-वक्ती में कब कोई किसी का साथ देता है!
कि तारीक़ी में साया भी जुदा होता है इन्सा से।

—उर्दू कहावत

ॐ सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहे।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहे॥

—कठोपनिषद्

[परमेश्वर हम दोनों (गुरु-शिष्यों) की साथ-साथ रक्षा करे (साथ-साथ बचावे) साथ-साथ पालन करे। दोनों साथ-साथ श्रम करें। हमारा अध्ययन पराक्रम युक्त (सक्रिय) हो। हम दोनों परस्पर द्वेष न करें।]

अहरबल का पत्थर—एक सॉलीलॉकी

डॉ० रमेश कुमार शर्मा

[हिन्दी परिषद् द्वारा अहरबल में आयोजित पिकनिक के दिन पर्वत-भ्रमण करते हुए, सदस्यों को एक विशाल गर्त्त के होठों पर रखा हुआ एक पत्थर दिखाई दिया। कुछ ऐसा मन में आया कि लोगों ने उसे धक्का देकर पुनः खाई में गिरा दिया, और उसके ढुलकने-टकराने तथा अन्त में नीचे, बहुत नीचे, सरिता में गिरने का मज़ा लूटा।]

युगों का मन्द मन्थन
अजस्र जल-धारा की धड़कन
सुनता, सहता, सभीत, मौन—
मैं पड़ा रहा; सदियों तक पड़ा रहा।

गोरे, सलज्ज, सैलानी,
मृदु-मंथर चरणों की—
मिलन-रोमांचित चाप,
सहता, सुनता सप्रेम, मौन—
मैं पड़ा रहा; युगों तक पड़ा रहा।

भीम-विशाल शिलाओं से आवृत
बांझ, अन्धी गुफाओं में
पवन की छटपटाहट,
युवती-विधवा सा—उसका सिर पीटना,

देखता, सुनता, संज्ञाहीन सा; मौन—
मैं पड़ा रहा; अवश, मैं पड़ा रहा।

वेदी पर घूमती
नव-वधू के—
झंकृत मन सा कँपता—रस्सी का पुल;
ऊपर, चपल यौवन का भार,
भीतर, प्रेम की फुहार औ'
—उमंग की धार का—
लज्जा के लचीले बाँध से,
टकराना, मुड़ना, फिर फिर टकराना, बिखर-बिखर जाना;
फिर—
व्याकुलता के फेन का
झूम-झूम, लचक-लचक जाना, नाच-नाच जाना।
उस नाच की थिरक,
संगीत की ताल, मन की मरोर और तन की कसक
देखता, सुनता, गुनता, साश्चर्य—
मुग्ध-मौन; मैं पड़ा रहा;
वर्षों तक पड़ा रहा।

अन्धे रास्तों पर—
—साँप से बहरे रास्तों पर
क़साई के छुरे समान
हरियाली के हृदय को चीरते,
पैने, पतले और क्रूर रास्तों पर,
संध्या के अँधियारों में
धुंधियाले आकाशों से
फूटी आँख के आँसू सी

वर्षा की उदास झड़ियों में,
गिरि-कन्दराओं से टकराकर
उपत्यकाओं में रोने, विलपने, बिसूरने वाली,
अचानक, तीर सी, जिगर में पार हो जाने वाली,
ज़ालिम, बेबस चीख़े;
किसी की पीठ में
छुपकर घुस जाने वाले
दोस्त के छुरे सी—ज़ालिम, बेदर्द चीख़ें।
तड़प तड़प जाने वाली,
और
तड़पाने वाली चीख़ें।
उल्लू की व्यंग-भरी पुकार
बाज़ की झपट
निर्दोष पक्षी का—बेबस फड़फड़ाना, दम तोड़ना।
इन सबको सुनता,
सिहरता, भयभीत, व्याकुल, मौन—
मैं पड़ा रहा; बेबस मैं पड़ा रहा।

युगों की नींद के
बेबस बन्धन तोड़,
पसीने से तर-ब-तर,
किसी भूखे मज़दूर के
दुखते कन्धों पर बैठ,
न जाने किस सितारे के सहारे से
उस गढ़े से, निगल लेने वाली—उस विकराल खाई से
क़दम क़दम रुकता, दम लेता,
हाँफता, गिरता, फिर फिर उठता, लड़खड़ाता,
मैं किसी तरह बाहर आया।

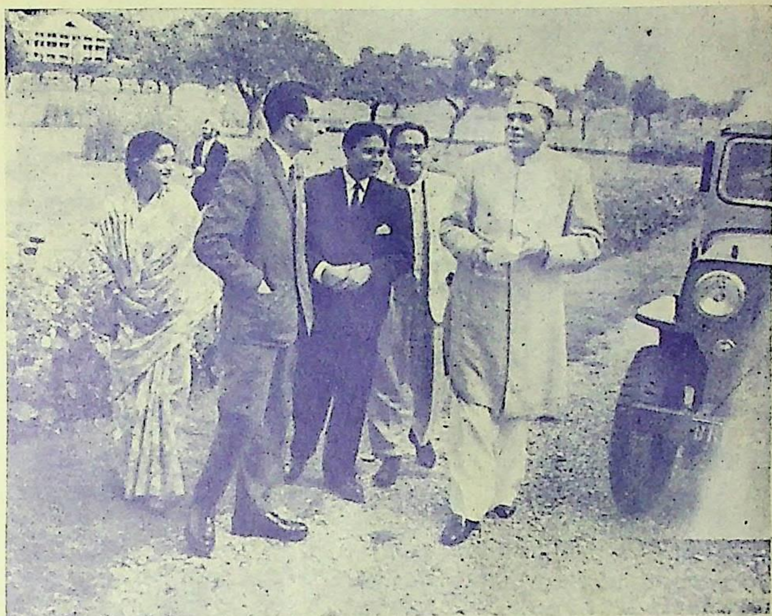
उस अदम्य प्रपात की
मनहर ऊँचाई के कगारे पर—
खुले आकाश की विशाल छाती के सहारे पर—
मैंने साँस ली ही होगी,
कि मेरे सैलानी भाई,
तुम अपनी मस्ती में झूमते आये,
साथ में,
रंगीनियों की—
बारात सी लाये—और,
मौज में आकर,
ज़ोर लगाकर, खिसका कर,
मुझ बेबस को
फिर उसी गढ़े में—धकेल दिया;
अरे ! ये क्या किया ।

युगों की यात्रा—मैं पूरी कर चुका था,
तुमने वहीं पहुँचा दिया; जहाँ से चला था,
फिर—
टकराता, कराहता; अपनी चोटों से घाटी को गुंजाता
लहूलुहान, बेबस, मैं—
वहीं पहुँच गया हूँ
जहाँ से चला था ।

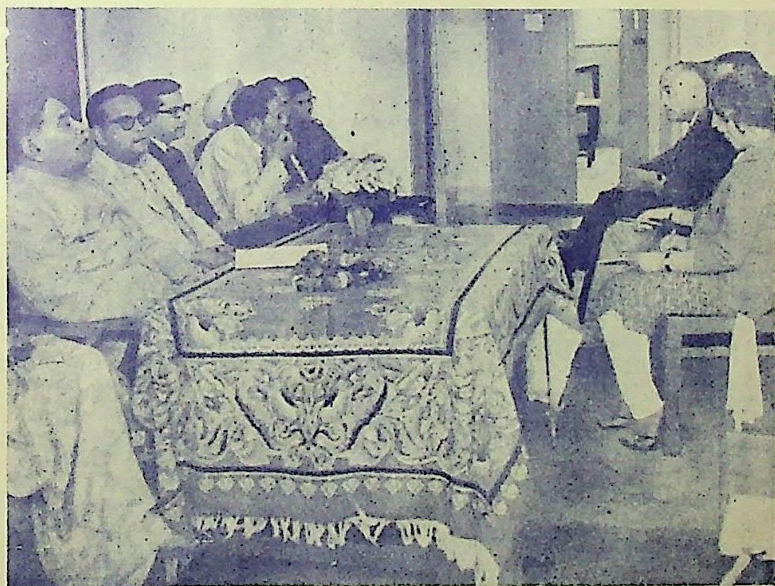
●

खीरा सिर से काटिये मलिये नमक लगाय ।
'रहिमन' करुअे मुखन को कहियत यहै दवाय ।।

—रहीम



विभागाध्यक्ष के साथ दिनकरजी के आगमन पर विभाग के शिक्षकों द्वारा उनका स्वागत



हिन्दी परिषद् की गोष्ठी में कविता-पाठ करते हुए राष्ट्रकवि दिनकर



हिन्दी परिषद् के सदस्यों एवं पदाधिकारियों के साथ लिया गया डॉ० रामधारीसिंह दिनकर का चित्र

सम्पादकीय

गुरु गोविन्दसिंह जयन्ती :

इस वर्ष देशभर में गुरु गोविन्दसिंहजी के जन्म की स्मृति में तृतीय शताब्दी समारोह मनाया गया। गुरुजी के पवित्र अस्त्र जो कि अँग्रेजों से प्राप्त हुए थे, सारे देश में दर्शनार्थ घुमाए गए। कश्मीर से लेकर देश के समस्त पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी भागों में इन पवित्र अस्त्रों का भव्य स्वागत किया गया। गुरु गोविन्दसिंह का धार्मिक तथा सामाजिक के अतिरिक्त साहित्यिक महत्व भी है। उनकी मुख्य रचनाओं में से एक को छोड़ कर शेष सभी ब्रजभाषा में हैं तथा उनकी काव्य-शैली उनके समय में प्रचिलित (रीतियुगीन) हिन्दी-साहित्य की शैली ही है। गुरु महाराज ने कुछ परम क्रान्तिकारी निर्णय लिए थे, जिनमें से एक था कि उनके बाद कोई भी मनुष्य-गुरु नहीं होगा—उन्होंने ग्रन्थ-साहब को ही गुरु निर्धारित कर दिया तथा अपने 'शिष्यों' को आदेश दिया कि 'गुरु-ग्रन्थ-साहब' के अनुसार ही वे आचरण करें। 'गुरुडम' तथा महन्तवाज़ी का आज के युग में जो रूप है उसे देखते हुए गुरुजी का यह निर्णय उनकी भविष्य-दृष्टि का प्रतीक हैं ! एक बात संभवतः उनके अनुगामियों में भी सब को विदित नहीं होगी— गुरुजी भगवान राम के तथा चण्डी के परम भक्त थे। उनके द्वारा रचित 'गोविन्द रामायण' हिन्दी साहित्य के रीतिकाल के प्रवन्ध-काव्यों में अपना विशेष स्थान रखती है। गुरुजी के साहित्य पर हिन्दी में पीएच० डी० की उपाधि के लिए शोध-कार्य भी हो रहा है। गुरुजी ने इस बात को निर्विवाद रूप से घोषित किया था कि सिक्ख-मत हिन्दुओं से विलग या विशिष्ट नहीं है, और जो लोग उन्हें (गुरुजी को) भगवान कहेंगे वे नरक जाँयगे। देश-प्रेम,

समाज-सुधार तथा साहित्य के क्षेत्र में क्रान्तिकारी दृष्टिकोण रखने के लिए वीर-गण-शिरोमणि गुरु गोविन्दसिंह का अपना विलग महत्व है ; अतएव भारत सरकार ने उनके सम्मान में पहल करके एक स्तुत्य कार्य किया है।

आचार्य पं० जगन्नाथ तिवारी अभिनन्दन समारोह :

वैसे तो देश में, विशेषकर हिन्दी में, अभिनन्दन-ग्रन्थों का फैशन सा चल गया है, लोग अपने रुपयों से, मित्रों से सहायता लेकर अपना अभिनन्दन करवाते हैं, किन्तु कभी कभी सुयोग्य एवं श्रेष्ठ विद्वानों का अभिनन्दन भी उनके भक्त करते हैं। ऐसे अवसरों पर जो अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं उनमें यदि केवल प्रशस्ति और पारिवारिक चित्र ही होते है तो उन ग्रन्थों की आयु अल्प ही रह जाती है ! हर्ष का विषय है कि पं० जगन्नाथ तिवारी का अभिनन्दन करने के हेतु जो ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है उसमें स्थायी महत्व की सामग्री है। डॉ० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक हैं तथा ग्रन्थ में काव्य-शास्त्रीय, उच्चकोटि के निवन्ध हैं। पं० जगन्नाथ तिवारी ने अपने जीवन के लगभग ४० वर्ष हिन्दी के अध्यापन में व्यतीत किये हैं। आगरा कॉलिज (आगरा विश्वविद्यालय) से अवकाश प्राप्त करने के बाद वे ज० क० विश्वविद्यालय के काश्मीर मण्डल में स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग के दो वर्ष तक आचार्य एवं अध्यक्ष रहे, तदुपरान्त वे जम्मू-मण्डल में स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग की स्थापना करने हेतु जम्मू चले गये। १९६८ तक वे वहाँ कार्य करेंगे। हम गुरुवर पं० तिवारी के अभिनन्दन के अवसर पर विभाग तथा परिषद के सदस्यों की ओर से उन्हें सादर शुभ-कामनाएँ अर्पित करते हैं।

आम चुनाव :

संसार के सबसे बड़े प्रजातंत्र भारत देश में इस समय चुनाव हो रहे हैं। भारतीय गणतंत्र अपनी धर्मनिरपेक्षिता के लिए आज के संकीर्णता तथा विद्वेष-कलुषित अन्तर्राष्ट्रिय वातावरण में एक आदर्श उपस्थित करता है, जिसका मुख्य आधार है कश्मीर और उसकी जनता। स्वेच्छा से मतदान करके मनचाही सरकार का बनाना प्रजातंत्र का मूलाधार है—और आज की भारतीय जनता में जो राजनीतिक-चेतना है उसे देख कर प्रजातंत्र के

भविष्य के स्थायित्व का अनुमान होता है। ऐसे समय में हिंसा से बचते हुए जनमानस के मन्तव्य को उभार कर लाने का कर्त्तव्य प्रत्येक देशवासी का है। जो लोग हिंसा करते है—या भोले भाले लोगों को हिंसा के लिए भड़काते हैं वे देशद्रोही हैं और उनका दमन करना न केवल सरकार का ही कर्त्तव्य है, अपितु प्रत्येक जागरूक भारतीय का भी कर्त्तव्य है। कृत्य का पालन, अकृत्य की उपेक्षा, सुकृत्य में सक्रिय योगदान तथा दुष्कृत्य का ओजपूर्ण विरोध व्यक्ति तथा समाज के समन्वित हित की दिशा का मार्ग है।

श्रीमती इन्दिरा गान्धी आहत :

इसी संदर्भ में हम उड़ीसा में होने वाले उस उत्पात की घोर निन्दा करते हैं, जिसमें पथराव के कारण श्रीमती गान्धी आहत हुई थीं। इस प्रकार के लज्जाजनक कृत्यों से देश-विदेश में भारतीय जनता—विशेषकर उड़ीसा निवासी लोग—बदनामी के भागी बनते हैं। वास्तव में देश में जनतंत्र के प्रति जागरूकता तभी पूर्ण हो सकेगी जब जनता ही इस प्रकार के कार्य करने वाले दुष्टों का दमन एवं प्रतिरोध करने के लिए उद्यत हो जायगी। विभाग तथा परिषद् की ओर से श्रीमती गान्धी को संवेदना-पत्र भेजा गया जिसमें उनके शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ की कामना की गई थी। इसी प्रकार श्री मधु लिमये के ऊपर किये गये घातक आक्रमण की भी हम निन्दा करते हैं।

चीन में उथल पुथल :

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दमन, समाज को शिकंजों में कसना, देश में अत्याचार, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बेईमानी तथा धोखेबाजी; इन सिद्धान्तों (!) पर आधारित चीन की वर्त्तमान सरकार जिसने पाकिस्तान के साथ गठबंधन करके भारत-विरोध का बीड़ा उठाया था—अब अपनी फैलाई हुई आग में स्वयं ही जल रही है। वहाँ चाओ-माओ के विरुद्ध चीन की जनता एवं सेना विद्रोह कर उठी है। तिब्बत को निगल कर, 'भाई-भाई' के नारे से ठग कर भारत की सीमा कुतरने का जो प्रयत्न चीन ने किया था उस समय कुछ देश चीन के साथ थे, हर्ष का विषय है अब उन देशों की आँखें भी खुल रही हैं। सांस्कृतिक-क्रान्ति के नाम पर अपने विरोधियों का दमन तथा बौद्ध-धर्म एवं इस्लाम के मूलोच्छेदन का जो प्रयत्न चीन में किया गया है उससे लगभग सारा संसार चीन के प्रति जुगुप्सा से भर उठा है। हाल में भगवान्

'अवलोकितेश्वर' की पवित्र मूर्ति के खण्डन तथा अपमान के जो समाचार तिब्बत से मिले हैं उनसे समस्त संसार के बौद्धों में आक्रोश की भावना उमड़ उठी है। 'अवलोकितेश्वर' के पवित्र कलेवर के भग्नावशेष परम पूज्य दलाई लामा के संरक्षण में पहुँचा दिए गये हैं। चीन की वर्त्तमान उथल पुथल के संदर्भ में यह आवश्यक है कि भारत तथा अन्य स्वतंत्रता-प्रिय देश तिब्बत को चीन के चँगुल से छुड़ाने का तुरन्त प्रयत्न करें।

भारतीय हिन्दी परिषद् का अधिवेशन :

दिसम्बर १९६६ के चतुर्थ सप्ताह में भारत के विश्वद्यिालयों के हिन्दी के शिक्षकों की संस्था "भारतीय हिन्दी परिषद्" का वार्षिक अधिवेशन विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में हुआ। अन्य औपचारिक एवं विशेष विषयों के अतिरिक "रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन" नामक विषय पर एक गोष्ठी हुई। सभापति श्रीवेंकटेश विश्वविद्यालय (तिरुपती) के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० विजयपालसिंह थे तथा परिसंवाद का प्रवर्त्तन किया डॉ० भगीरथ मिश्र ने। दोनों विद्वानों ने रीति काल की कविता पर लगाये जाने वाले आक्षेपों का उत्तर देते हुए उसके पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता पर बल दिया। आज जब हम अपनी प्राचीन परम्पराओं को स्वतंत्र-चिन्तन के प्रकाश में देखने का प्रयत्न कर रहे हैं—रीतिकाल तथा उसकी कविता-निधि का स्वतंत्र एवं निर्भीक पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। उस काल का नाम भी अब 'श्रृंगार काल' ही माना जाना चाहिए—जैसा कि अधिकांश विद्वान मानने के पक्ष में हैं। 'श्रृंगार काल' तथा उसकी कविता का पुनर्मूल्यांकन" विषय पर आगरा विश्वविद्यालय में डी० लिट्० की उपाधि के लिए शोध-कार्य भी हो रहा है, जिसके, इसी वर्ष, पूर्ण हो जाने की आशा है।

अन्तर्विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर हिन्दी-पाठ्य विषय संगोष्ठी :

क० मुं० हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ (आगरा विश्वविद्यालय) ने इस संगोष्ठी का आयोजन (५ फरवरी '६७ से १४ फरवरी १९६७ तक) किया। इस अति-सफल, एवं अध्यापन की दृष्टि से परम उपयोगी संगोष्ठी में हिन्दी-शिक्षण-संसार के लगभग सभी वरिष्ठ विद्वान् एवं आचार्य पधारे थे। कश्मीर से लेकर मद्रास तक और शान्तिनिकेतन (बंगाल) से लेकर पूना तक के विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर हिन्दी विभागों के शिक्षकों ने इस संगोष्ठी

में भाग लिया। २२ विश्वविद्यालयों तथा अनेक महाविद्यालयों के प्रतिनिधियों के इस महा-सम्मेलन ने अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिए जिनकी संस्तुति सारे विश्वविद्यालयों से की जायगी। ५ फरवरी १९६७ को इस संगोष्ठी के संचालन हेतु आरम्भिक बैठक की गई जिसका सभापतित्त्व जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय (जम्मू मण्डल) के विभागाध्यक्ष पं० जगन्नाथ तिवारी ने किया। आगे के दस दिनों के कार्यक्रम में लगभग आधे दिनों की गोष्ठियों एवं भाषणों में सभापतित्त्व पं० तिवारी ने किया। हिन्दी अध्यापन क्षेत्र में पंडित तिवारी वरिष्ठतम हैं और उनकी उपस्थिति ने संगोष्ठी को सफल बनाने में बहुत बड़ा हाथ बटाया। संगोष्ठी में निम्नलिखित आचार्यों एवं विभागाध्यक्षों ने भाग लिया :— पं० जगन्नाथ तिवारी (जम्मू मण्डल; ज० क० वि० वि०); डॉ० दीनदयालु गुप्त (लखनऊ); डॉ० हजारी प्रसादजी द्विवेदी (चण्डीगढ़); डॉ० नगेन्द्र नगाइच (दिल्ली); डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा (वाराणसी); डॉ० हरिवंशलाल शर्मा (अलीगढ़); डा० सत्येन्द्र (जयपुर); डॉ० केसरी नरायण शुक्ल (गोरखपुर); डॉ० प्रेमनरायण शुक्ल (कानपुर); डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव (भागलपुर); डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त (द० भा० हि० प्र० स० मद्रास); डॉ० रामप्रकाश अग्रवाल (मेरठ) तथा डॉ० रमेश कुमार शर्मा (कश्मीर मण्डल, जम्मू तथा कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर)। इनके अतिरिक्त आगरा विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों के विभागाध्यक्ष तथा अन्य विश्वविद्यालयों से भेजे गये प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया।

संगोष्ठी का उद्घाटन आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति महोदय डॉ० श्रीरंजन के आशीर्वचन के साथ डॉ० दीनदयालु गुप्त ने किया। सभापतित्व पं० जगन्नाथ तिवारी ने किया। संगोष्ठी में किये अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णयों में से कुछ नीचे दिये जा रहे हैं :—

१. स्नातकोत्तर (एम० ए०) परीक्षा में कम से कम आठ (जहाँ संभव हो वहाँ नौ) प्रश्न-पत्र रखे जाँय।

२. हिन्दी-भाषी तथा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के पाठ्य-क्रम में पूर्ण समानता अपेक्षणीय है।

३. विकल्पों की संख्या बढ़ा दीं जाय जिससे एम० ए० (हिन्दी) पढ़ने वाले विद्यार्थी को कोई न कोई प्रायोगिक प्रशिक्षण भी प्राप्त हो सके। विकल्पों की विस्तृत सूची प्रस्तुत की गई।

४. आठों प्रश्न-पत्रों के पाठ्य-क्रम पर विस्तार से विचार किया गया और उसका निर्धारण किया गया।

५. हिन्दी साहित्य के इतिहास के साथ संस्कृति के शिक्षण पर बल दिया गया। शृँगारकाल (रीतिकाल) के पुनर्मूल्याँकन के विषय में लगभग सभी विद्वान् एकमत थे।

६. इस संगोष्ठी की सफलता को देखते हुए यह निर्णय किया गया कि 'शोध-कार्य' को लेकर इसी प्रकार की संगोष्ठी का अयोजन इसी वर्ष किया जाय। क० मु० हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान विद्यापीठ के निर्देशक डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने कहा कि जिस प्रकार इस संगोष्ठी के लिए १०७००) रु० का अनुदान विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने दिया है, यदि उसी प्रकार आयोग ने 'शोध-कार्य-संगोष्ठी' के लिए धनराशि का अनुदान दिया तो वे अवश्य संगोष्ठी का आयोजन करेंगे।

संगोष्ठी की सफलता तथा उपादेयता के लिए डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त धन्यवाद एवं बधाई के पात्र हैं। जिस स्निग्ध-सुचारुता के साथ संगोष्ठी का संचालन एवं आयोजन उन्होंने किया उससे विद्यापीठ एवं आगरा विश्व-विद्यालय दोनों, यश के पात्र वने हैं।

विभागीय सूचनाएँ :

इस वर्ष पिछले वर्षों की अपेक्षा एम० ए० (पूर्वार्द्ध) में विद्यार्थियों की प्रवेश-संख्या अधिक रही। ५१ विद्यार्थी जिनको पूर्वार्द्ध में प्रवेश दिया गया उनमें से बी० ए० परीक्षा में १ ने प्रथम श्रेणी २५ ने द्वितीय, तथा शेष ने तृतीय श्रेणी प्राप्त की थी।

पूर्वार्द्ध की परीक्षा में बैठने वाले २० विद्यार्थियों में से ५ ने प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किये तथा सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली विद्यार्थिनी (फूलकुमारी मोज़ा) ने दोनों मण्डलों के विद्यार्थियों में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए।

उत्तरार्द्ध की परीक्षा में १९ में से ५ विद्यार्थियों ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की तथा राजकुमारी राज़दान ने सम्पूर्ण कला-संकाय में सर्वाधिक अंक प्राप्त किये।

पं० जगन्नाथ तिवारी स्वर्ण-पदक :

विभागीय परिषद् ने निर्णय किया है कि जो विद्यार्थी एम० ए० (उत्तरार्द्ध) की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करेगा उसे परिषद् की ओर से स्वर्ण-पदक प्रदान किया जायगा। पं जगन्नाथ तिवारी अभिनन्दन समारोह के उपलक्ष में, स्वर्ण-पदक का नाम "पं० जगन्नाथ तिवारी स्वर्ण-पदक" रखा गया है। इस वर्ष यह पदक राजकुमारी राज़दान को दिया जायगा। इसके अतिरिक्त परिषद् एवं विभाग की गति विधियों तथा विभिन्न प्रतियोगिताओं के लिए तीन रजत पदकों के दिए जाने का निश्चय किया गया!

डॉ० रामधारीसिंह 'दिनकर' का आगमन :

१९६६-६७ के सत्र के आरम्भ में भागलपुर विश्वविद्यालय के भू० पू० उपकुलपति, राष्ट्रकवि डॉ० दिनकर ने विभाग में पधारने की कृपा की। दिनकरजी गृह-मंत्रालय की ओर से हिन्दी-विशेषज्ञ के रूप में कश्मीर पधारे थे। उनके सम्मान में परिषद् ने एक उत्सव का आयोजन किया जिसमें विभिन्न स्नातकोत्तर विभागों के शिक्षक निमंत्रित थे। राष्ट्रकवि ने एक ओजपूर्ण एवं विचारोत्तेजक भाषण दिया तथा अपनी कविता का रसास्वादन परिषद् के सदस्यों एवं अधिकारियों को कराया। दिनकरजी ने विभाग का निरीक्षण किया तथा विद्यार्थियों को आशीर्वाद दिया।

परिषद् के पदाधिकारी :

१९६६-६७ के वर्ष के लिए विभाग की हिन्दी परिषद् के निम्नलिखित पदाधिकारी निर्धारित हुए :—

१. संरक्षक :— सम्माननीय डॉ० कर्णसिंह (विश्वविद्यालय के कुलपति)

२. अध्यक्ष :— श्री मि० म० बेग़ (कश्मीर मण्डल के सह-उपकुलपति)

३. सभापति :— डॉ० रमेशकुमार शर्मा (विभागाध्यक्ष)

४. उपसभापति :— डॉ० मुहम्मद अयूब ख़ाँ (विभाग में प्राध्यापक)

५. अनुसंधित्सु प्रतिनिधि :— कुमारी सन्तोष ज़ारू एम० ए०

६. मंत्री :— फूल कुमारी मोजा एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
७. उपमंत्री :— नीना कौल एम० ए० (पूर्वार्द्ध)
८. उपमंत्री (सांस्कृतिक कार्यक्रम) :— रत्नीकुमारी राज़दान एम० ए० (उत्तरार्द्ध)
९. कोषाध्यक्ष :— कृष्णा कौल एम० ए० (पूर्वार्द्ध)

'वितस्ता' के विषय में :

'वितस्ता' का १९६७ का वसन्त-अंक आपके सामने हैं। अहिन्दी-भाषी प्रदेश में टंकण एवं मुद्रण की जो कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें हम ही समझते हैं। इन्हीं कठिनाइयों को देखते हुए तथा छपाई के खर्चे में किफायत की दृष्टि से पत्रिका का मुद्रण आगरा में कराया गया है। श्री गुलावसिंह यादव ने अपने प्रेस में जो सुविधाएँ 'वितस्ता' को प्रदान कीं उनके लिए हम उनके आभारी हैं।

परिषद् में निर्णय किया गया है कि 'वितस्ता' के वर्ष में, कम से कम दो (यदि संभव हो तो तीन) अंक निकाले जाँय। यह भी निर्णय किया गया कि एक अंक में परिषद् में पढ़ी जाने वाली ललित-साहित्य की रचनाएँ प्रकाशित की जाँय और एक में शोध-कार्य सम्बन्धी लेख हों। यदि तीसरा अंक निकाला जा सके तो उसकी रूपरेखा के विषय में पुनः विचार किया जाय। इस निर्णय के अनुसार 'वितस्ता' के इस अंक में इसी प्रकार की रचनाएँ प्रकाशित की जा रही हैं। इन रचनाओं में से ही (विद्यार्थियों की) कुछ रचनाओं पर पुरस्कार दिया जायगा। प्रयत्न यह किया गया है कि डोगरी, कश्मीरी, हिन्दी, लद्दाखी तथा उर्दू इन सभी भाषाओं की बानगी प्रस्तुत की जाय। सफलता कहाँ तक मिली है—विद्वान-पाठक निर्णय करेंगे।

आगरा कालिज के अँग्रेजी विभाग के प्राध्यापक **श्री घनश्याम स्वरूप जी अस्थाना एम० ए० साहित्यरत्न** का 'वितस्ता'-परिवार अत्यन्त आभारी है। श्री अस्थाना ने अपनी एक कविता छापने की हमें अनुमति दी तथा उन्होंने एक परम सुन्दर एवं सुरुचि पूर्ण कवर-डिजाइन स्वयं चित्रित करके 'वितस्ता' को भेंट किया—जोकि इस अंक से 'वितस्ता' का मुखपृष्ठ बन गया है। श्री अस्थाना आगरे के यशस्वी कवि-कलाकार हैं—हम उन्हें पुनः धन्यवाद देते हैं।

सम्मतियाँ :

अगस्त १६६६ के अंक पर जो सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं वे इस अंक के आरम्भ में प्रकाशित की गई हैं। हम अपने कुलपति महोदय सम्मानीय डॉ० कर्णसिंह के विशेष रूप से आभारी हैं कि उन्होंने अपने व्यस्त समय में से कुछ क्षण निकाल कर हमारी पत्रिका को पढ़ा और अपनी कृपापूर्ण सम्मति भेजने का कष्ट किया। प्रयत्न किया जायगा कि पत्रिका उनके निर्देशानुसार सर्वांगपूर्ण बन सके। (कुलपति महोदय का विश्वविद्यालय तथा अन्य सब शिक्षण-संस्थाओं पर विशेष अनुराग है—और वे समय-समय पर विश्व-विद्यालय प्रांगण में पधार कर विभिन्न विभागों का निरीक्षण करते हैं। हमारे विभाग में भी पधारने का उन्होंने कष्ट किया था)। आशा है 'वितस्ता' कुलपति महोदय की कृपा एवं स्नेह को भविष्य में भी प्राप्त करती रहेगी।

अन्त में, मैं अपने सहयोगियों तथा छात्र-सम्पादकों को धन्यवाद देता हूँ, जिनकी सहायता, इस पत्रिका के सम्पादन में, आपना एक विशेष स्थान रखती है।

—रमेश कुमार शर्मा



सुनो और समझो

जो जानता है किन्तु यह नहीं जानता कि वह जानता है, वह सो रहा है—उसे जगा दो। जो जानता है और यह भी जानता है कि वह जानता है, वह ज्ञानी है—उसका अनुगमन करो। जो नहीं जानता और जानता है कि वह नहीं जानता, वह शिशु है—उसे सिखाओ। जो नहीं जानता और यह भी नहीं जानता कि वह नहीं जानता, वह मूर्ख है—उससे बचो।

—एक पुरानी कहावत

× × × × ×

मंत्र-जंत्र अरु तंत्र-सिद्धि, जो इन माँहि कछु होइ।
हजरत ह्वै आपुहि रहें, माँगत फिरत न कोइ॥

—श्री गुरु गोविन्दसिंह (श्री दशम ग्रन्थ)

राष्ट्र-गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे !
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कलबंग,
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधितरंग,
तव शुभनामे जागे, तव शुभ आशिष मांगे,
गाहे तव जय गाथा,
जन गण मंगल दायक जय हे, भारत भाग्य विधाता,
जय हे, जय हे, जय हे !
जय, जय, जय, जय हे !!



जयहिन्द

VITASTA

Journal of the Post Graduate Department of Hindi, Kashmir Division, University of Jammu and Kashmir, Amarsinghbag, Srinagar, Kashmir, INDIA.

Vol. III MARCH 1967 No. 1

मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी आगरा–२